भारत पर आधारित उपन्यास
६
रामकुमार 'भ्रमर'
अनुगत
9.3

अनुगत

महान् पराक्रमी थे अर्जुन
बाण संधान में पृथ्वी पर
उन जैसा कोई नहीं था।
परम् मित्र थे कृष्ण उनके
और एक उपदेशक भी
अर्जुन के ऐसे मार्ग दर्शक,
जिनके सत् परामर्श ने उन्हें
पूर्ण पुरुष बनाया,
हर क्षेत्र में विजय और
सफलताएं दिलाईं।
स्वयं मानते रहे अर्जुन
कि वह कृष्णमय हैं
पूरी तरह समा गए हैं कृष्ण उनमें
कृष्ण से अलग कोई अस्तित्व ही नहीं।
अश्वमेध यज्ञ, पुत्र से युद्ध, सुभद्रा हरण,
उलूपी और चित्रांगदा प्रसंग,
इस उपन्यास खंड की कथा के
कुछ ऐसे रोचक अंश हैं,
जो पाठक के मन को अपने
साथ बांध ले चलते हैं।
पढ़िए महाभारत कथा माला का
एक और विशिष्ट खंड 'अनुगत'।

कौरव-पाण्डव कथा पर आधारित

रामकुमार भ्रमर

अनुगत

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

अनुगत
(उपन्यास)

प्रथम संस्करण : १९८५

प्रकाशक :
हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

ANUGAT
(Novel)
RAMKUMAR BHRAMAR

'अनुगत' से '१८ दिन' तक

श्रीकृष्ण और अर्जुन की एक साथ स्तुति करते हुए उन्हें 'नरनारायण' कहा गया है। सम्भवतः मनुष्य और ईश्वरत्व के परस्पर सम्बन्ध और पूर्णता के लिए इससे बढ़िया अभिव्यक्ति किसी शब्द में कभी नहीं हुई हैं। 'महाभारत' के सामान्य पठन-पाठन में वे परस्पर मित्र, संबंधी, हमउम्र हैं और एक जोड़े की तरह लगते हैं, किन्तु वस्तुसत्य में वे एक ऐसे सनातन सम्बन्ध से भी जुड़े हुए हैं, जिसकी ओर सहसा ध्यान नहीं जाता। यह सम्बन्ध है— मनुष्य की जिज्ञासा और समाधान का। प्रश्न और उत्तर का। प्यास और जल का। जीवन, जगत, समाज, संस्कृति, धर्म, व्यवस्था, राजनीति, मूल्य, आत्मा और परमात्मा अनन्त प्रश्नों से भरे अर्जुन मनुष्य मात्र की उस जिज्ञासु भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसके कारण वह उत्तरोत्तर विकास करता रहा है तथा श्रीकृष्ण उनके हर प्रश्न का तार्किक समाधान करते हुए उस अनन्त ज्ञानभंडार की तरह हैं जो निस्सन्देह लौकिक नहीं है। वह कभी समाप्त नहीं होता, उसके दाता हाथों में किसी पल कमजोरी नहीं दीख पड़ती और उसकी बहुविधि पूर्णता यह विश्वास दिला देती है कि मनुष्य से इतर और पास निस्सन्देह कोई ऐसी शक्ति है, जो जड़-चेतन को संचालित करती है। वह विज्ञान की परिधि से बाहर ज्ञान के असीम आकाश में अपना उपस्थिति-बोध कराती है। जो उसे पाना चाहता है या समझने की तनिक-सी इच्छा रखता है, वह श्रद्धा के सहारे सिद्धिमार्ग पर उसे प्राप्त कर सकता है। अर्जुन उसके प्रतीक हैं।

अर्जुन पौरुष-पूर्ण हैं, पराक्रमी, तेजस्वी, और तपस्वी भी हैं; किन्तु उनकी विचारशीलता से भरे व्यक्तित्व को श्रीकृष्ण के बिना पूर्णता नहीं मिल पाती। वह प्रतिपल श्रीकृष्ण के केवल अनुयायी नहीं, अनुगत हैं। इस श्रद्धा ने ही उन्हें सिद्धि दी है। यह समर्पण ही उनकी महाशक्ति है। यह निष्ठा ही उनका ईश्वरबोध है। इस उपन्यास में मैंने प्रयत्न किया है कि अर्जुन का श्रीकृष्णयुक्त यह भाव व्यक्त हो सके। अर्जुन के जीवन में सांसारिक सुख-दुःख और पीड़ा के अनेक अवसर आए हैं, किन्तु ऐसे प्रत्येक अवसर पर उन्होंने अपने बिखराव को किस तरह समेटा है और समेटकर कैसे उसे चिंतन की दिशा दी है--यह भी अनुगत में उभर सके—मेरा प्रयत्न रहा है।

—रामकुमार भ्रमर

५३/१४, रामजस रोड, करौलबाग,
नयी दिल्ली-११०००५

अनुगत

शिविर के पिछले द्वार से बाहर निकले। सन्तुष्ट हुए। जहां तक दृष्टि गई, वहां तक सेना जन-समुद्र की तरह बिखरी हुई थी। आश्वस्त हुए। एक गहरा सांस लेकर धन-धान्य से सम्पन्न धरा के उस क्षेत्र को देखा।

सिन्धु क्षेत्र समृद्ध था। कृषि उन्नत और ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियां भी बहुत-सी। पवित्र सिन्धु नदी ने जहां धरती को सदा-सर्वदा के लिए यौवनमयी और स्फूर्तिवान बना रखा था, वहीं क्षेत्र के राजाओं ने उसे समाज-व्यवस्था और अनुकूल राज-नियमों से सजाया-संवारा था।

अर्जुन कुछ पल उसी तरह मुग्ध भाव से चारों ओर देखते रहे। कुरु-राज युधिष्ठिर का संदेशा लेकर दूत सभी ओर जा चुके थे। यह संदेशा था—अश्वमेधयज्ञ में आमंत्रण! यज्ञ-अश्व एक तरह से भरत-खंड की सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न सत्ता की ओर से एक राजनायिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्धों का संदेश-प्रतीक था। इस संदेश के स्वीकार-अस्वीकार की अपनी राजनीतिक महत्ता थी।

अनुमान था कि सिन्धु क्षेत्र के अधिकतर राजा सहजता के साथ महाराज युधिष्ठिर का आमंत्रण स्वीकार करेंगे! भोर के साथ क्रमशः दूत वापसी लेने वाले थे···सैनिक-पड़ाव के पास वाले राजाओं की ओर से रात ढलते-ढलते उत्तर मिल जाने थे!

अर्जुन मुड़े और अपने शिविर में लौट आए। सेवक ने पादुकाएं उठाईं।

धनंजय ने स्वयं अस्त्र-शस्त्र यथास्थान रखे। एक अन्य सेवक आकर कवच खोलने लगा। तभी द्वारपाल उपस्थित हुआ, "प्रणाम, कुन्ती नंदन ! कुछ दूत उपस्थिति की आज्ञा चाहते हैं ?"

"भेजो, उन्हें।" धनंजय बोले, फिर आसन पर बैठ रहे। निश्चिन्त थे कि अधिकतर की ओर से शुभ-संदेश ही मिलेगा। भला गांडीवधारी को इस भू-तल पर चुनौती कौन देगा ?

अनुमान गलत भी नहीं था अर्जुन का। युद्ध की वीभत्सतम संहार-लीला कुछ गिने-चुने योद्धाओं का इतिहास बन गई है—अर्जुन उनमें से एक। सहज था कि उन्हें चुनौती देना, अपरोक्ष रूप से मृत्यु को आमंत्रित करना होगा !

दूत सिर झुकाकर सामने आ खड़े हुए। क्रमशः सभी ने अभिवादन किया, फिर एक बोला, "शुभ समाचार नहीं है, महाराज !" अभी अगले शब्द पूरे कर सके, इसके पूर्व ही अविश्वसनीय आश्चर्य, किन्तु झुंझलाहट के साथ अर्जुन ने उन्हें देखा, यह क्या कहते हो दूत !"

दूत ने तेजस्वी पाण्डुपुत्र से दृष्टि नहीं मिलाई। सिर झुकाए हुए ही थरथराते शब्दों में निवेदन किया, "हां, देव ! अधिकतर क्षेत्रीय राजा यज्ञ में सम्मिलित होने को तैयार नहीं हैं।"

अर्जुन के जबड़े कस गए। कवच आधा खुल चुका था। उत्तेजनावश उसी स्थिति में खड़े हो गए। कुछ तीखे, जलते स्वर में प्रश्न किया, "और तुम क्या कहते हो दूत !"

वह अन्य की ओर देख रहे थे। उन्होंने चेहरे उठाए तो लगा था कि पहले दूत का कथन ही उन सब के माथे पर अंकित है। उनमें से एक बोल पड़ा था, "हम सभी को लगभग एक ही उत्तर मिला है, गांडीवधारी ! सिन्धु-प्रदेश के सभी राजा इस तरह बोले हैं, जैसे एकमत होकर उत्तर दे रहे हों।"

जितने क्रोधित हुए थे अर्जुन, उससे कहीं अधिक चकित हुए। लगा था कि उन राजाओं ने अपरोक्ष रूप से महाराज युधिष्ठिर के आमंत्रण को नहीं, अर्जुन को चुनौती दे डाली है। उन अर्जुन को, 'जिनके गांडीव की टंकार ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में अनेक जन-क्षेत्र जन-शून्य ही नहीं कर डाले थे,

वल्कि उस पृथ्वी की जीवन-शक्ति को ही सोख लिया था।

ऐसे अर्जुन के लिए अव भी चुनौतियां शेष हैं ? आश्चर्य !

विश्वास करने का मन नहीं होता—पर सत्य ?

सत्य सामने था—प्रकट सत्य ! तेज तिलमिला देने वाले थप्पड़ जैसा सत्य ! सिन्धु-प्रदेश के राजाओं का उत्तर ! पूछा था, "दूत, तुमने राजाओं को परिणाम की कल्पना दिला दी है ना ?"

"हां, राजन् ! हमने वतला दिया था कि इस उत्तर को महाप्रतापी कुन्ती सुत कभी नहीं सह सकेंगे !" दूत ने वतलाया, "यह भी कह दिया था कि सिन्धु-क्षेत्र जन-शून्य हो जाएगा ! कुरु-राज युधिष्ठिर भरत खंड के सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न और श्रेष्ठ राजा हैं; किन्तु·· ।"

"वोलो, दूत ! किन्तु क्या ?" अर्जुन ने स्वर को संयत रखा । अव तक़ उत्तेजना पर काफी कुछ वश कर लिया था उन्होंने ।

"किन्तु वे एकमत ही नहीं, संभवतः संगठित भी हैं देव !" दूत ने विनम्रता से कहा । शीश पुनः झुका दिया ।

"हूं ऽऽऽ।" अर्जुन गुर्राए, फिर उन्हें वाहर जाने की स्वीकृति दी । दूत ने जाते-जाते उत्तर दिया था, "एक राजा ने स्वयं आपसे भेंट का निर्णय लिया है, महाराज ! संभवतः वह प्रातः उपस्थित होगा ।"

अर्जुन ने कुछ नहीं कहा । स्पष्ट था कि अधिक वात नहीं करना चाहते । दूत प्रणाम करके वाहर निकल गए ।

सेवक पुनः अधखुले कवच खोलने लगा था । अर्जुन शिलांवत् बैठे रहे ।

आश्चर्य और अविश्वास अव भी लहरों की तरह उनके मन-सागर में हिलोरें ले रहा था । क्या सच ही भू-खंड पर अभी इतना साहस शेष है जो गांडीवधारी को चुनौती दे सके ?

लगा था कि साहस नहीं होगा वह, दुस्साहस होगा । सिन्धु-प्रदेश के राजाओं से जो उत्तर मिला था, उसके कारण कुछ पल पूर्व वह उत्तेजित भी हुए थे, क्रोधित भी; किन्तु अब लग रहा था, उत्तेजना और क्रोध

व्यर्थ हैं ! अर्थपूर्ण हैं केवल विचार ! अपने आप से ही पूछने लगे थे, "वह कौन-सी शक्ति है, जो अर्जुन की अद्भुत रण-कुशलता, पराक्रम, सामर्थ्य और शक्ति के होते हुए भी उन्हें उन छोटे-छोटे राजाओं से चुनौती दिलवा रही है ?"

समझ में नहीं आ रहा था।

बहुत तरह सोचा। बहुत तरह अपने आप से प्रश्न किए। बहुत-से प्रश्न।

"क्या वे अर्जुन से श्रेष्ठ योद्धा हैं ?"

लगा था कि नहीं।

"क्या उनका संगठन अर्जुन की पराजय बन सकता है ?"

यह भी असंभव !

और क्या वे सब दुर्बुद्धि हो सकते हैं ? परिणाम जानते हुए भी उद्दंडता बरत सकते हैं ?

निश्चय ही नहीं। कोई एक होता, तब यह संभव था; किन्तु वे अनेक थे और सब एकमत थे !

तब ? तब कौन-सी चीज है जो अर्जुन को यह उत्तर भिजवा रही है ?

नहीं मिला था उत्तर !

किन्तु उत्तर मांगेंगे अवश्य। जानना होगा अर्जुन को। जन-विनाशक महायुद्ध में अर्जुन की असामान्य शक्ति, सामर्थ्य और क्षमताओं से दूर-दूरंत दिशाओं के धरती-आकाश परिचित हो चुके हैं, तब वह क्या है, जो वैसी चुनौती दिलवा रहा है ?

उत्तर निस्संदेह उस, राजा से मिलना था, जो प्रातः उनसे भेंट करने वाला था। कौन है वह ? क्या नाम है उसका ?

दूत ने नाम नहीं बतलाया था। सिन्धु-क्षेत्र में अनेक छुटपुट राजा थे। महाराज जयद्रथ ने सभी को अधीन कर रखा था या यह कि जयद्रथ की शक्ति ने सभी को विपत्तिहीनता का राज्याश्रय दे दिया था। वह सभी से श्रेष्ठ, सिन्धुराज कहलाते थे।

जयद्रथ का स्मरण करते ही हलका-सा झटका फिर से लगा था अर्जुन

को। मन ने नया प्रश्न कर दिया। प्रश्न नहीं, निश्चित आशंका जनमी। एक आवाज उन्होंने अपने ही भीतर अनुभव की थी, "निस्संदेह जयद्रथ-सुत सुरथ के अधीन वे राजा एक स्वर, एकमत होकर अर्जुन को चुनौती दे रहे होंगे ?"

"आश्चर्य !" बुदबुदाए कुन्तीपुत्र, "निस्संदेह आश्चर्य ! क्या बालक सुरथ और उसके अधीनस्थ छुटपुट राजा जानते नहीं कि महावीर अर्जुन के बाण ने उद्दंड जयद्रथ का शाश युद्धस्थल से बहुत दूर उछाल दिया था। तब यह मूर्खतापूर्ण दुस्साहस क्यों ?"

एक बार पुनः उत्तरहीन हो उठे थे कुन्तीपुत्र ! मन ने फिर से संकेत कर दिया था—"उत्तर अभी नहीं मिल सकेगा, पांडुपुत्र ! भोर की प्रतीक्षा करनी होगी। ऐसे हर अंधेरे प्रश्न का उत्तर केवल भोर ही हो सकती है !"

अर्जुन ने पलकें मूंद ली थीं। आसन पर लेट रहे। सेवक कक्ष से बाहर चले गए।

पलकें मूंद लेने के बावजूद अर्जुन शांत नहीं हो सके। रह-रहकर सिंधु देश के राजाओं का उत्तर उनके पौरुष, पराक्रम और शक्ति को कुरेद रहा था। लगता था कि हर कुरेदन पर एक हलकी-सी टीस उठती है अर्जुन के मन में। इस टीस में एक आहत भाव ! सब जान-मान चुके हैं कि महावीर अर्जुन से श्रेष्ठ धनुर्धर और योद्धा इस पृथ्वी पर नहीं है, फिर भी चुनौती ?

रात बहुत देर से नींद लगी थी—सुबह के साथ ही पुनः अशान्त हो उठे। मन व्यग्र और व्यग्र होता जा रहा था। क्या कारण है ? एक छटपटाहट प्रश्न बनकर मन में बिखरी हुई।

सूर्योदय के तुरंत बाद ही समाचार आ गया था– सिंधु क्षेत्र के एक राजा पांडव-श्रेष्ठ से भेंट करना चाहते हैं !

आज्ञा—दी, "उपस्थित हों !"

बहुत छोटे-से जन-क्षेत्र का राजा था वह। अर्जुन की विशाल सेना की

किसी छोटी टुकड़ी जैसी शक्ति का स्वामी, किन्तु अर्जुन ने यथोचित राज्य-सम्मान दिया, महाराज युधिष्ठिर की ओर से कुरु-राज शिष्टाचार निवाहा। जब राजा ने आसन ग्रहण कर लिया तो मधुर शब्दों में अर्जुन ने प्रश्न किया, "हम आपका क्या शुभ करें, राजन् !"

राजा ने भी उत्तर में मीठी बातें कीं। कहा, "सिंधुराज सुरथ और उनके सभी अधीनस्थ क्षेत्रीय राजा आपकी श्रेष्ठता और गुणों का सम्मान करते हैं कुन्तीनंदन ! और निवेदन करते हैं कि महाराज युधिष्ठिर का यज्ञ सफल हो।"

"पर···पर राजन्, आप सब के सम्मिलित हुए बिना वह यज्ञ कैसे सफल होगा ?" अर्जुन ने चतुरता से नीति-वार्ता प्रारंभ कर दी थी, "आपकी उपस्थिति से उस समारोह की महत्ता भी बढ़ेगी, शोभा भी। मैं इसी दृष्टि से अश्वमेध-यज्ञ का अश्व लेकर उपस्थित हुआ हूं। आप इस आमंत्रण को स्वीकारें !"

"यह आमंत्रण होता गांडीवधारी ! तब निश्चित ही सिंधुराज सुरथ और हम सब उसे स्वीकार करते; किन्तु यह स्पष्टतः कुरु-राज्य की सत्ता के समक्ष हमारी सार्वभौमिकता की बलि है। खेद है हम इसी कारण चाह-कर भी आपका यह आदेश स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं।" राजा ने उत्तर दिया।

किरीटी मुसकराए। न चाहते हुए भी होंठों पर कटुता तिर आई। क्रोध की ललाभी भी पुतलियों ने अनुभव की, किन्तु स्वर संयत रखा। पूछा, "परिणाम आप जानते हैं राजन् !"

"निस्संदेह !" राजा उठ खड़ा हुआ था, "निस्संदेह परिणाम हमें ज्ञात है कुन्तीपुत्र ! यह भी ज्ञात है कि आपकी शक्ति-सम्पन्नता और धनु-र्ज्ञान के समक्ष सिंधु देश ही नहीं, पृथ्वी के सभी राज्य और वीर तृण-मात्र हैं।"

"फिर भी आप यह दुस्साहस कर रहे हैं ?" अर्जुन ने चकित होकर प्रश्न किया।

"हां, गांडीवधारी ! इसे हम भी जानते हैं कि यह दुस्साहस ही नहीं, उद्दंड दुस्साहस है। अपरोक्ष रूप से आत्महत्या।" राजा के शब्दों में सहसा

कसैलापन और पीड़ा उभर आई थी। कहा, "किन्तु हम बाध्य हैं। समूचा सिंधु-प्रदेश इस उद्दंडता के लिए बाध्य है !"

"आश्चर्य !"

"आश्चर्य जैसा कुछ भी नहीं है अर्जुन !" राजा ने उसी दृढ़ता के साथ उत्तर दिया था, "यह हम सब के सत्ता-स्वातंत्र्य का प्रश्न है। हमारी सार्वभौमिकता का प्रश्न है।"

अर्जुन सहसा निरुत्तर हो उठे थे।

एक क्षण के लिए शिविर-कक्ष में सन्नाटा बिखरा रहा, फिर अर्जुन ने प्रश्न किया था, "मुझे उत्तर जानकर प्रसन्नता हुई है, राजन् ! पर मैं महाराज युधिष्ठिर और कुरुराज्य का सेवक हूं। एक बार पुनः यही निवेदन करता हूं कि आप सब इष्ट मित्रों सहित धर्मराज के यज्ञ में उपस्थित हों तथा युद्ध का विचार त्याग दें।"

"मैं पूर्व में ही क्षमा याचना कर चुका हूं कुन्तीसुत !" राजा ने उत्तर दिया था।

"तब मैं कहूंगा कि आपसे भेंट करके प्रसन्नता हुई और सुख मिलेगा जब रणक्षेत्र में हमारी भेंट होगी !" अर्जुन ने कठोरता से कह दिया था।

"जैसी आपकी इच्छा कुन्तीनंदन !" राजा ने उत्तर देकर विदा ली थी। अर्जुन उस समय भी अशांत ही रहे थे। राजा के शब्द कानों में गूंजते रह गए थे।

सत्ता-स्वातंत्र्य और सार्वभौमिकता का प्रश्न !

यही कुछ तो कहा था उस छोटे-से राजा ने। परिणाम में मृत्यु को स्वीकार गया था वह।

अर्जुन चकित हो रहे थे ! राजा का चेहरा रह-रहकर दृष्टि के सामने तिर आता। न तो शब्दों में कम्पन था, न ही स्वर में थकान या भय। एक नयी कुरेदन मन की परतों में जाग गई थी, "क्यों ?"

उत्तर नहीं पा सके थे अर्जुन। निश्चय किया था कि जब भी श्रीकृष्ण से भेंट करेंगे, तब यह जिज्ञासा रख देंगे।

श्रीकृष्ण का स्मरण करते ही लगा था कि कुछ खाली हैं, खोए हुए-

से। जब-जब कोई ऊहापोह आ खड़ी होती थी, तब-तब वही याद हो आते थे। जिस समय युधिष्ठिर ने अश्वमेध-यज्ञ की इच्छा व्यक्त की, पूज्यऋषि वेदव्यास और द्वारकाधीश उपस्थित थे। युधिष्ठिर का समर्थन किया था उन्होंने; किन्तु युधिष्ठिर बोले थे, "वासुदेव ! मेरी इच्छा है कि यज्ञ-दीक्षा तुम ग्रहण करो ! तुम ही तो हो, जिनके प्रभाव, ज्ञान, शक्ति और सहायता से हमने विजयश्री प्राप्त की है। तुम स्वयं ही यज्ञ हो, परब्रह्म हो। अतः तुम ही इस दायित्व को संभालो !"

सभी भाई सहमत थे। निस्संदेह श्रीकृष्ण की गुरु-गरिमा के प्रताप से ही सब कुछ प्राप्त किया था उन्होंने।

पर श्रीकृष्ण ? सदा की तरह वैसे ही श्रीकृष्ण। सागर जैसे गहन-गम्भीर और मलय की तरह मन। कहा था, "नहीं, धर्मराज ! यह पुण्य-कार्य भी तुम्हें ही करना होगा। मैं केवल उस धर्म का पालन करूंगा, कर्म-निर्वाह करूंगा, जो तुम मुझे सौंप दोगे। तुम्हारे इस सद्प्रयास का श्रेष्ठ फल सभी पांडव बन्धुओं को प्राप्त होगा।"

और युधिष्ठिर ने अश्वमेध-यज्ञ की घोषणा की थी। सभी ओर जय का आमंत्रण-संदेश लेकर अर्जुन चले थे।

किन्तु उस क्षण अर्जुन का मन हुआ था, पूछें, "श्रीकृष्ण ! सदा ही अन्य के प्रति दायित्व निवाहते आए तुम कामनाहीन कैसे हो ? यह त्वरित निर्णायक शक्ति कहां से जनमती है तुम्हारे भीतर ! वह क्या है, जो तुम्हें सागर-गांभीर्य भी देता है, वायु की चंचलता भी ? अनुकूल और विपरीत को सहज भाव से निवाहे चलने की यह अमानवीय क्षमता कैसे मिली है तुम्हें ?"

पर नहीं पूछ सके। केवल सोचा था और निश्चय किया था—कभी अवसर पाकर पूछ लेंगे।

फिर विस्मृत कर गए थे। राजा युधिष्ठिर के आदेश पर विशाल सेना लेकर अपरोक्ष विजय-यात्रा पर निकल पड़े थे।

ऐसी विजय-यात्राएं बहुत की हैं। बहुत बार राज, समाज, नीति, धर्म के अनगिनत प्रश्नों के सामने जा खड़े हुए हैं। अनेक बार निरुत्तर हुए हैं;

किन्तु अधिकतर अवसरों को श्रीकृष्ण ने ही संभाला संजोया है।

और जब-जब श्रीकृष्ण नहीं हुए हैं—अर्जुन स्वयं को ज्ञान-रणक्षेत्र में नितान्त असहाय और अकेला अनुभव करते हैं। अनगिनत प्रश्न होते हैं; जिनका न तो उत्तर मिलता है उन्हें, न ही उत्तर खोज पाते हैं। केवल यही क्यों? अनुभव करते हैं, जैसे अपने ही भीतर से अपनापन कहीं गुम जाता है—विचित्र अधूरापन!

इस अधूरेपन को भी खोजा है अर्जुन ने। क्या चीज है जो खोती है? और क्या है वह जो श्रीकृष्ण से मिलते ही पा जाते हैं?

ज्ञात नहीं कर सके! और अब लगता है कि ज्ञात कर भी नहीं पाएंगे। एक बार कहीं किसी के मुंह से अपना विचित्र-सा नाम सुना था उन्होंने। अर्जुन और श्रीकृष्ण का एकनाम!

नर नारायण!

किसने कहा था—स्मरण नहीं है। बस, इतना जानते हैं कि बहुत सटीक लगा था उन्हें। वह नर और कृष्ण नारायण। एक-दूसरे के पूरक! सम्पूर्ण—प्रकृति! सम्पूर्ण वह सब जो दृष्ट है और जो अदृष्ट भी है!

अर्जुन अकेले होते ही केवल नर हो जाते हैं—नारायणहीन! यह नारायणहीनता ही संभवतः अर्जुन का खालीपन है।

क्या श्रीकृष्ण भी उनके बिना ऐसा अधूरापन झेलते होंगे? एक प्रश्न उठ आया था अर्जुन के मन में।

फिर हंस पड़े थे—एकांत प्रकोष्ठ में लेटे-लेटे ही हंसी आ गई थी। सेवक दौड़ा हुआ आ पहुंचा। आश्चर्य से उन्हें देखता हुआ। दृष्टि में विस्मयपूर्ण प्रश्न, "क्या हुआ देव!"

अपने से परे होकर स्थिति-सत्य से जुड़ गए अर्जुन। कहा था, "कुछ नहीं सेवक! तुम जाओ!"

वह अनबूझ भाव दृष्टि में उगाए शिविर से बाहर चला गया। अर्जुन पुनः अपने से जुड़ गए।

नर नारायण!

नर और नारायण !

संभवतः नहीं। केवल नरनारायण !

पल-भर कैसी बचकाना बात सोच ली थी उन्होंने ? नर तो नारायणहीनता का अभाव झेल सकता है; पर नारायण ?

तनिक भी नहीं। इसलिए कि नारायण दर्शित होकर भी अदर्शित सत्य है। केवल ब्रह्म !

और नर ?

वह केवल दर्शित। देह।

एक—नाशवान् !

दूसरा—नाशहीन !

'तब क्या अर्जुन ब्रह्महीन हो उठते हैं कृष्ण की अनुपस्थिति से ?' उन्होंने जैसे स्वयं से ही प्रश्न किया था।

त्वरित उनके भीतर से उत्तर भी आया, "नहीं ! सच संभवतः यह है कि अर्जुन, मित्र श्रीकृष्ण के रूप में परब्रह्म से साक्षात् के आदी हो चुके हैं। ज्ञान का अंतहीन जलाशय अपने भीतर रखे हुए भी मनुष्य गुरु के इंगित बिना उसे पहचान नहीं पाता।

वैसी ही स्थिति हो जाती है अर्जुन की। लगता है कि उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाते हैं। करते भी हैं तो देर तक अपने को मथे रहने के बाद। सो भी आश्वस्त नहीं।

और जब वह सिंधु का एक साधारण राजा युद्ध-परिणाम जानते हुए भी युद्धामंत्रण दे गया है, तब अर्जुन पुनः सोचग्रस्त हो गए हैं—वैसा क्यों हुआ ?

क्यों हुआ ? नहीं जान सके थे। कब थकान नींद बनकर पलकों में समा गई थी—स्मरण नहीं। भोर के साथ ही युद्ध की तैयारियां प्रारम्भ कर दीं। सूर्य चढ़ते-चढ़ते अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित एक बड़ी टुकड़ी को सिंधु-क्षेत्र के राजाओं के उस संगठित मोर्चे पर आक्रमण के आदेश दे दिए !

एक बार पुन: पृथ्वी रक्त से नहा उठी। विध्वंस ने काला घिनौना अंधकार धरती के उस क्षेत्र के समूचे भविष्य-वर्षों पर बिखराना प्रारंभ कर दिया ! अर्जुन की सेनाएं भयावह नर-संहार करती हुई कुरुराज युधिष्ठिर की विजय-पताका फहराती आगे बढ़ीं।

विचित्र-सी यांत्रिकता में बंधे-जड़े गांडीवधारी किसी क्षण अग्नि की गति से और किसी पल विध्वंसकारी पवन की गति से आगे बढ़ने लगे।

जहां-तहां मनुष्यों की देहें तिनकों की तरह आकाश में उड़ती हुई, सैकड़ों कुचलते हुए, सैकड़ों सड़ते-गलते···और उन सबके बीच विजयनाद करती हुई अर्जुन की सैन्य-टुकड़ियां ! सब ओर चीत्कार ! सब ओर अग्नि-धूम्र की धुन्ध, सब ओर विषाक्त होती जाती प्राणवायु ! अर्जुन का मन भी किसी-किसी पल उस वीभत्सता से अकुलाने लगता; किंतु कर्म-पथ यही ! वीरपांडवों का धर्म यही·· वह बढ़ते जाते। एक के बाद एक मोर्चे को तोड़ते, जय करते हुए।

शाम ढलते-ढलते सिंधु-सेना का बड़ी मात्रा में संहार हो चुका था। फसलें तबाह हो गई थीं। वातावरण दुर्गंधयुक्त हो उठा था।

किन्तु चकित थे अर्जुन ! अभी-अभी विभिन्न सैन्य टुकड़ियों के नायकों ने आकर अपनी जय का समाचार देते हुए सूचना दी थी, "शत्रु-सेना दूर तक पिछड़ चुकी है राजन् ! किन्तु आश्चर्य है कि सिन्धु के छोटे-छोटे राजा अब भी आत्मसमर्पण के लिए तैयार नहीं हैं।

निस्सन्देह आश्चर्य ! अर्जुन ने सोचा था। उस छोटे-से राजा के शब्द फिर कानों में सिमट आए थे। उसने कहा था, "··· हम भी जानते हैं कि यह केवल दुस्साहस नहीं, उद्दंड दुस्साहस है ! अपरोक्ष रूप से आत्महत्या; किन्तु बाध्य हैं हम !"

"क्यों ?" अर्जुन अपने से ही बुदबुदा उठे थे, "क्यों ?"

उत्तर उस समय भी नहीं था। आत्महत्याएं चलती जा रही थीं···एक नहीं, अनेक आत्महत्याएं ! वीभत्स आत्महत्याएं। लग रहा था कि भयावह दावानल में जान चुराकर भागने के बजाय, कुछ कीट हैं जो स्वयं ही लपटों में आ गिरते हैं—नितान्त स्वेच्छा से !

शरीर पर आए घावों पर पट्टियां बंधवाते औषध लगवाते हुए अर्जुन

यही कुछ सोचे गए थे। सहसा प्रश्न किया था उन्होंने, "इसका अर्थ यह है कि सम्पूर्ण नाश तक सिन्धु वीर युद्ध बंद नहीं करेंगे ?"

"यही लगता है, महाराज !" नायकों में से एक ने चकित स्वर में उत्तर दिया था। लगता था कि वे सब स्वयं भी कम हैरान नहीं थे।

"जैसी उनकी इच्छा !" अर्जुन ने उत्तर दिया था। टुकड़ियों के नायक अपने-अपने शिविरों में लौट गए।

अर्जुन सोच में।

हस्तिनापुर से चले तो भरत-खंड के अधिकतर राजाओं ने सादर शीश झुकाकर कुन्तीपुत्र का स्वागत किया था। अश्वमेधयज्ञ में उपस्थिति का वह आमंत्रण स्वीकार लिया था···गिने चुने युद्धरत भी हुए थे। ठीक पतंगों की तरह ही; पर युद्ध के बीच में ही अर्जुन के सामने घुटने टेक दिए थे उन्होंने। त्रिगर्त राज सूर्यवर्मा ने कहा था, "धनंजय ! अब यह नरसंहार बंद करो ! हम आपके दास हुए···।"[1]

और गौरवपूर्वक अर्जुन ने कहा था, "यदि तुम हमारे अधीन हो त्रिगर्त-राज तो निःशंक इस प्रदेश का शासन सम्हाले रहो ! राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में अवश्य ही उपस्थित हो जाना !"

लगभग यही कुछ घटा था—प्राग्ज्योतिषपुर[2] में। वज्रदत्त ने सत्ता

---

१. त्रिगर्त : पंजाब के अन्तर्गत जालंधर, कांगड़ा आदि का क्षेत्र।
उल्लेखनीय है कि त्रिगर्त के राजा सुशर्मा ने पांडवों के विरुद्ध कौरव पक्ष की ओर से कुरुक्षेत्र युद्ध में भाग लिया था और अपनी संशप्तक सैन्य टुकड़ी को पांडवों के नाश के लिए भेजा था। संभवतः सूर्यवर्मा सुशर्मा का पुत्र था।

२. प्राग्ज्योतिषपुर : आसाम के अन्तर्गत गोहाटी का पूर्व नाम। तत्कालीन प्राग्ज्योतिष-पुर के अन्तर्गत गोहाटी और आसपास का एक बड़ा क्षेत्र आ जाता था। वज्रदत्त प्राग्ज्योतिषपुर का राजा था और असुर जाति से था। उल्लेखनीय है कि वज्रदत्त के पिता भगदत्त (हिरण्यकश्यपु का पुत्र) कौरवों की ओर से कुरुक्षेत्र में लड़ा और मारा गया।

स्वीकार ली थी…

किन्तु थे सम्वय राजा ?"

आश्चर्य ! वे सभी मरने के लिए तैयार हैं ? अभी सोच ही रहे थे कि द्वारपाल उपस्थित हुआ, "प्रणाम, राजन् !"

कुन्ती सुत ने लेटे-लेटे ही उसकी ओर मुड़कर देखा।

द्वारपाल ने सूचना दी, "सिन्धुदेश की राजमाता उपस्थित होने की आज्ञा चाहती हैं, देव ! उन्होंने संदेश भिजवाया है।"

सिन्धुदेश की राजमाता ? अर्जुन तुरंत ही शैया से उठ बैठे। कुछ उतावलेपन से कहा, "हां-हां, उन्हें ले आओ ! तुरंत !"

दुःशला ! बहन दुःशला ! अर्जुन के भीतर किसी ने भर्राई आवाज में नाम लिया। सिन्धुराज जयद्रथ की पत्नी। वीर कौरवों की भगिनी ! भरत खंड के प्रतापी कुरुवंश की राजकुमारी !"

एक चेहरा उभर आया है। गहरा और सघन होता हुआ चेहरा…। कोमल—सरल चेहरा… !

दुःशला !

केवल गान्धारीपुत्रों की ही नहीं—कुन्तीपुत्रों की भी बहन ! सबसे छोटी, युवा बहन !

अर्जुन अशांत हो उठे हैं। महाभारत के भीषण समर में दुःशला के पति जयद्रथ का वध किया था उन्होंने। उसके वध की एक दुर्धर्ष प्रतिज्ञा कर डाली थी और फिर किया भी। गांडीव से छूटे वाण ने बदन को रण-क्षेत्र से दूर उछालकर इस तरह गिराया था, जैसे वह किसी बालक का खिलौना हो। दुर्दांत, पराक्रमी और कुरुपक्ष का अद्वितीय महारी जयद्रथ ! सिन्धुराज जयद्रथ !

किशोर अभिमन्यु के क्रूरतापूर्ण वध में जयद्रथ भी शामिल था और पुत्रशोक से विह्वल अर्जुन उसके नाश का निश्चय कर बैठे थे। उस क्षण न कोई सम्बन्ध याद रह गया था, न जयद्रथ से जुड़ा दुःशला का चेहरा !

ऐसे अनेक रथी-महारथियों का संहार किया था अर्जुन ने ! किस-

किस से संबंध न था ? कौन से थे जो किसी-न-किसी संसार संबंध में नहीं जुड़े हुए थे। कोई भाई, कोई दामाद, कोई पुत्र, कोई मित्र, कोई मातृपक्ष से संबंधी कोई पितृपक्ष से अपना !

किंतु कौरव-पांडव साक्षात् यम के भाव से उन सबका संहार करते चले गए थे। उन्हीं में एक जयद्रथ !

और जयद्रथ—सौ कौरवों, पांच पांडवों और एक कर्ण का इकलौता बहनोई ! अर्जुन को स्मरण हो आया है दुःशला का चेहरा। वह चेहरा, जब सिन्धुराज जयद्रथ से विवाह हुआ था उसका।

माथे पर सुहागतिलक, कानों में कर्णफूल और हाथों में कंगन। गौर-वर्णी, कोमलांगी शोड्षी दुःशला·· जितने अंग-प्रत्यंग चमक रहे थे, उतने ही रत्नजड़ित आभूषण !

और तभी अर्जुन को लगा कि दुःशला के समीप ही जयद्रथ खड़े हैं। चौड़े माथे, विशाल बाहु, शक्तिसम्पन्न, ऐश्वर्यवान युवक राजा जयद्रथ ! दोनों को स्नेहपूर्वक गले लगा लिया था अर्जुन ने।

स्मरण बदन से जुड़ गया···वे शरीर-अंग थरथराते अनुभव हो रहे हैं, जिन्होंने वरसों पूर्व सुहागमयी दुःशला को हृदय से लगाया था।

और दुःशला आ रही हैं। अर्जुन जैसे शून्यवत् खाली हो गए हैं।

दुःशला भी शून्य-सी होंगी। खाली !

इस शून्य के जनक हुए हैं स्वयं धनंजय !

जब दुःशला सामने आ खड़ी होंगी—तब अर्जुन क्या उत्तर देंगे ? कैसे देख सकेंगे उस ओर ? कैसे स्नेह दे पाएंगे ? और कैसा आशीष देंगे ? जिसे श्रापित जीवन भोगने को बाध्य कर चुके हैं, भला उसे वरदान क्या देंगे ? उस हाथ से उसका शीश कैसे दुलराएंगे, जिससे गांडीवधारी ने धनुष पर तीर चढ़ाया था। वह तीर जिसने जयद्रथ का वध नहीं किया, वस्तुसत्य में दुःशला को एक देहयुक्त मृत्यु झेलने पर बाध्य कर डाला।

असमंजस में जितने पड़े, उससे कहीं अधिक व्यग्र हो उठे ! पुनः श्रीकृष्ण स्मरण हो आए हैं। ऐसे दुविधाग्रस्त, पराजित क्षणों को नारायण के ज्ञान-वचनों से ही मृत होते-होते जीवंत रखते आए हैं कुन्तीसुत अर्जुन !

जल्दी-जल्दी शिविर में चलने लगे हैं अर्जुन। अनजाने और अनचाहे।

उनसे कहीं अधिक तेज कदम हैं उनके मन में। लगता है जैसे शिविर में अर्जुन के पांव कैद हो गए हैं, देह में मन।

और कुछ पल बाद शिविर में आ रही हैं सिन्धुदेश की राजमाता दुःशला! बहन के वैधव्य से मन जितना आहत होगा, उतना ही अभिमन्यु की मृत्यु से आहत हुआ था—क्या अन्तर रहा था जयद्रथ द्वारा अभिमन्यु-वध में और अर्जुन द्वारा जयद्रथ-वध में ?

एक-दूसरे के पुत्रों की हत्या कर दी उन्होंने। एक-दूसरे मे एक-दूसरे की जीवनमणियां छीन लीं !

यह है कुरुक्षेत्र के महासमर की पांडवोपलब्धि !

लगा कि गले में कुछ अटक रहा है—एक छटपटाहट के साथ लगभग चिल्ला पड़े थे, "अरे, कोई है ?"

स्वर की अकुलाहट और व्यग्रता सुनकर एक साथ कई सेवक दौड़े चले आए। वह सहज स्वर जो नहीं था अर्जुन का।

जब सेवक सामने आकर पंक्तिबद्ध आज्ञा सुनने के भाव से खड़े हो रहे, तब लगा था कि असंयत होकर चीख पड़े थे। स्वयं को सहेजा, स्वर को संवारा; पर आवाज फिर भी अटकती हुई-सी निकली, "जल ! जल चाहिए !"

एक सेवक ने जल दिया।

जल के घूंट निगले—इस तरह जैसे देर तक किसी मरुथल में चलते रहे। प्यास गले के तन्तु चीरती हुई।

सेवक चले गए। अर्जुन फिर थके-से बैठे रहे। अपने भीतर अजब-सा कायरभाव-अनुभव होने लगा था उन्हें।

विचित्र बात !

असहनीय स्थितियों को अदम्य साहस से सह जानेवाले अर्जुन। दुर्धर्ष युद्ध में निरन्तर बढ़ते जाने वाले असाध्य योद्धा अर्जुन ! विपरीत प्रकृति में अति-सहजता से संघर्षरत हो जाने वाले धनंजय !

कायर ?

हां, दुःशला के सामने कायर ही होंगे वह। यही अर्जुन की नियति है। यही उनकी लाचारी और यही उनकी पराजय ! सुरथ साथ आएगा

संभवत: । महाराज जयद्रथ का पुत्र । अर्जुन का भानजा ।

मां-बेटे दोनों ही उनकी ओर देखते हुए खड़े हो जाएंगे । अभिवादन करके । निश्चय ही वे तुरंत कुछ नहीं बोलेंगे; पर लगेगा हर ओर से, हर दिशा सहसा वाचाल हो उठी है । प्रश्न कर रही है, "देखो, भारत ! हमें देखो ! तुमने कुरुक्षेत्र समर में जय प्राप्त की है ना ? यह जय जयद्रथों, कर्णों और वृषसेनों को हत करके पाई है न तुमने । हम उन्हीं में से किसी के शेष हैं ! स्मृति-अंश !"

आंखें मूंद ली थी अर्जुन ने ।

पर पलकों पर पर्दा डाल देने से पुतलियां दृश्य देखना तो बंद नहीं कर देतीं ? वे काले पर्दे पर मन की तूलिका बनने वाले अनंत चित्र देख सकती हैं । लगा था कि फिर से वे दु:शला को देखने लगे हैं ।

व्यग्र होकर पुन: उठ पड़े । व्यर्थ ही तेज-तेज घूमने लगे । क्यों, किसलिए कारण नहीं मालूम । बस, लगता था कि अपने से ही भगोड़े हो जाना चाहते हैं !

यह पहली बार हुआ हो-- ऐसा नहीं है । अनेक बार हुआ है । अनेक तरह । अलग-अलग स्थितियों में । अलग-अलग अर्थों और संदर्भों में; पर हुआ है !

पर ऐसे हर अवसर पर या तो युधिष्ठिर उनके पास हुए हैं अथवा श्रीकृष्ण ने ज्ञान गंगा से अर्जुन की छटपटाहट संभाल ली है । या यों कि अपने ही भीतर हारते, संत्रस्त होते अर्जुन को विजय-शक्ति दी है ।

किन्तु आज अकेले हैं अर्जुन[1] । इतने अकेले और ऐसी दुविधाग्रस्त स्थिति में, जिससे बचाव की राह नहीं मिल रही ।

द्वार पर पुन: पर्दा फड़फड़ाया— अर्जुन की चहलकदमी थक गई ।

---

१. अर्जुन के १० नाम हैं—
१. अर्जुन, २. फाल्गुन, ३. जिष्णु, ४. किरीटी, ५. श्वेतवाहन, ६. वीभत्सु, ७. विजय, ८. कृष्ण, ९. सव्यसाची, १०. धनंजय ।

मुड़, [illegible] सौवीर की राजमाता दुःशला को शिविर-कक्ष में जाने की राह दे रहा था।

अर्जुन ने सिटपिटाकर दृष्टि हटा ली !

किंतु कहां हटा पाए। चेहरा नहीं देखना चाहते थे दुःशला का। पलकें झुकाकर चरणों पर दृष्टि डाली थी और दृष्टि जा ठहरी थी—एक नन्हें बालक पर !

कौन है यह बालक ?

दुःशला से प्रश्न पूछने का अवसर नहीं मिला। वह बोल पड़ी थी, "सौवीर नरेश सुरथ का पुत्र महाप्रतापी धनंजय को प्रणाम करता है, भईया !"

सुरथ का बेटा ? अर्जुन चकित हुए। और···सुरथ कहां है ?

दुःशला की आवाज में कम्पन था। उससे कहीं अधिक डुबडुबाहट, जैसे किसी जलकुंड के भीतर से बोल रही हों।

"प्रणाम करो पुत्र !"

रहा नहीं गया अर्जुन पर, "सुरथ ?" आगे पूछ नहीं सके।

दुःशला ने बतलाया, "भयावह युद्ध में तुम देख नहीं पाए भईया ! तुम्हारा भानजा जैसे ही तुम्हारे सामने आया, प्राण छोड़ बैठा।"

अर्जुन का मुंह खुला रह गया। गला सूखकर जोरसे चिटचिटा उठा। बोले नहीं, किन्तु भीतर एक चीख गूंज गई, "हे, अनंत !"

दुःशला की आंखों से आंसू झरने लगे थे। सुरथ का छोटा-सा बालक बड़ी सरल मुसकान से उन्हें देख रहा था। अर्जुन ने अनुभव किया, जैसे यह मुसकान जलती सलाखों की तरह उनके सीने में उतरती जा रही है। बूंद-बूंद लहू छलकने लगा है। अपने ही भीतर अनेकानेक धिक्कार उठने लगे हैं। यह कैसी जय है सव्यसाची ! जिसका हर क्षण पराजय की अनंत वेदना से भरा हुआ है ? जिसका दर्शन मात्र रोंगटे खड़े कर देता है ? जिसकी प्राप्ति का अनुभव ग्लानि के गहरे, बहुत गहरे दलदल में डबो देता है ?

जयद्रथ-संहार की पीड़ा ही क्या कम थी कि अर्जुन अजाने ही सही; पर सुरथ की मृत्यु के कारण बन गए ? इकलौती बहन को केवल विधवा ही नहीं बनाया, पुत्रहीनता के शोक में भी डाल दिया।

संभलने के प्रयत्न में भी संभलने नहीं दिया था उन्हें। थके से आसन पर बैठ रहे। शब्दहीन ! जय में पराजय झेलते हुए !

दुःशला उसी तरह नन्हें बालक का हाथ थामे हुए खड़ी थीं। कुछ क्षण शांत हो रही थीं वह। अर्जुन ने समूचा साहस संजोया, शक्ति जुटायी, बहन के भाल की ओर दृष्टि उठाई।

गौरवर्ण, तेजपूर्ण, यौवन की आभा से भरा हुआ वह चेहरा उदासी के कोहरे से ढका हुआ था। आंखें सुन्दर होतें हुए भी सोई हुईं-सी, सपाट माथा समुद्र की अनंत शांति ओढ़े हुए…कलाइयां सूनीं। वस्त्र ज्यादा। युवा संन्यासिनी-सी लगी थीं वह !

अर्जुन न जाने कितनी बार अपने भीतर-ही-भीतर सुलगते-बुझते रहे, कितने-कितने चीन्हे-अनचीन्हे धिक्कारों से स्वयं को ही आहत करते रहे।

"भईया ?" दुःशला के होंठ फिर खुले। अर्जुन को लगा कि समुद्र में पुनः ज्वार उठा है; पर विचित्र था यह ज्वार ? न ध्वनि, न दर्शन; किंतु प्रभाव और परिणाम ज्वारवत्।

दुःशला ने कहा था, "राजा दुर्योधन ने जो कुछ किया और उनके प्रभाव में सौवीरराज जयद्रथ से जो-जो अपराध हुए, उन्हें अपनी बहन के लिए भूल जाओ। इस समय मैं यही सब कहने आयी हूं। सिन्धुदेश की धरती पर चल रहे इस मृत्युनर्तन को तुम ही रोक सकते हो, गांडीवधारी ! शांत हो !

अर्जुन अकुलाकर कह देना चाहते थे, "नहीं-नहीं, बहन। मुझे इस तरह ताड़ित मत करो ! मैं केवल राजा युधिष्ठिर का स्नेह-संदेश लेकर आया हूं—तुम पर कौरव-सत्ता थोपने नहीं !" किंतु बोल ही नहीं सके। आंखें भर आई थीं उनकी। दृष्टि पुनः सुरथ के बालक पर जा ठहरी थी। वह कब, किस पल दुःशला की अंगुली छोड़कर अर्जुन के पास आ खड़ा हुआ था…ज्ञात नहीं। अर्जुन बालक को गोद में लेने के लिए मचल उठे थे…

"अर्जुन ! सुरथ का यह पुत्र तुम्हारा पौत्र ही है भईया ! देखो तो, इसमें और परीक्षित में भला क्या अन्तर है ?"

अर्जुन ने सहसा ही बालक को गोद में भरा, स्नेह से चूम लिया।

दुःशला ने आंसू पोंछते हुए स्वर बटोरा, बिखराव सहेजकर प्रार्थना की, "इस बालक की आंखों में देखो किरीटी ! कैसी आशा से तुम्हें ताक रहा है, जैसे कह रहा हो —शांत हो देव ! युद्ध रोक दो ! मेरे लिए युद्ध रोक दो !"

अर्जुन अकुलाकर खड़े हो गए। दुःशला की ओर से चेहरा मोड़ा, कहा, "धिक्कार है मुझे और मेरे क्षत्रियत्व को ! इस क्षत्रिय-धर्म के कारण मैंने अपने सभी सगे-सम्बन्धियों, कुटुम्बियों का नाश कर डाला ! मुझे अधिक पीड़ित मत करो, बहन ! अधिक दुःख मत दो !"[1]

दुःशला सिसक उठी थीं। पर सिसकियां कुछ ही झरीं। सहसा उन्होंने होंठों पर साड़ी का छोर लगा लिया था।

अर्जुन बोले थे, "जाओ, बहन ! निश्चिंत होकर जाओ ! अर्जुन बहन के अपना धर्म अवश्य ही पूरा करेगा ! मैं वचनबद्ध हुआ।"

दुःशला कुछ और कहे, इसके पूर्व ही अर्जुन ने पुकारा था, "द्वारपाल !"

सेवक और द्वारपाल उपस्थित हुए।

अर्जुन ने आदेश दिया था, "राजमाता को सादर सम्मान राजमहल तक पहुंचाओ।"

बच्चे को गोद से उतार दिया था उन्होंने। स्नेह से माथे पर हाथ फिराया, फिर एक ओर हट गए।

---

१. शोकाकुल अर्जुन ने दुःशला के दीन वचनों को सुनकर कहा—ऐसे क्षात्र धर्म को धिक्कार है। इस धर्म का अनुयायी होकर, और दुर्योधन की दुष्टता के कारण मैंने अपने कुटुम्बियों और सम्बन्धियों का ही नाश कर डाला !"
दुःख से व्याकुल दुःशला दीन स्वर से विलाप करने लगीं। यह देखकर अर्जुन ने लज्जा के मारे अपना सिर झुका लिया।
उपरोक्त दोनों ही वर्णन (अश्वमेध पर्व) के ७८वें अध्याय में श्लोक-क्रम ३१ से ४० के बीच आए हैं।

दुःशला ने अभिवादन किया। बाहर निकल गईं। अर्जुन वहीं खड़े-खड़े अपनी हथेली देखने लगे थे। हथेली, जिसे सुरथ-सुत के सिर पर फिराया था...लगता था कि मुलायम-मुलायम बाल कपास के फाहे जैसा अनुभव देते हुए अब भी अनुभव दे रहे हैं !

अगले ही दिन सूर्योदय के साथ कुरुजांगल की सेना के पड़ाव उठ गए थे। अर्जुन आगे चले ! भारी मन लिए। शरीर में थकान अनुभव करते हुए।

कैसे मोहग्रस्त हो उठे थे वह ? उन्होंने अपने-आपसे प्रश्न किया था। यह मोहग्रस्तता अर्जुन का नर-स्वभाव। इस स्वभाव को कितनी-कितनी बार श्रीकृष्ण ने संभाला है ? अर्जुन को सत्यासत्य की ऐसी व्याख्याएं दी हैं, जिनसे अलग न तो सृष्टि है, न सत्य और न प्रकृति !

अर्जुन हर ऐसे अवसर पर सतर्क हुए हैं। कर्म-पथ से जुड़ गए हैं... या कि सत्य के साधक हुए हैं पर साधना में कितनी-कितनी बाधाएं आ जाती हैं ? मन हुआ था पुकार लें श्रीकृष्ण को ! मुझे फिर तुम्हारी आवश्यकता है मित्र ! फिर मुझे सम्पूर्ण होना है !

महासमर के समय भी बहुत मोहग्रस्त हो उठे थे वह। मन विषाद से भारी हो गया था।

सेना बढ़ रही थी। धूल-आंधी का बवंडर उड़ाती हुई और अर्जुन अनायास अपने-आपको उखड़ाव में अनुभव करने लगे थे। वही अर्जुन, जिनके हाथों ने पल में गांडीव उठाना स्वभाव बना लिया था। वही अर्जुन जिनकी दृष्टिमात्र से शत्रुपक्ष पर असंख्य बिजलियां टूट गिरती थीं। वही अर्जुन जिनका लक्ष्यबेध पराक्रम, वीरता और अस्त्र-कुशलता कौरव-पक्ष को ही नहीं, दूर-दूरंत राजाओं के साहस दरका दिया करती थी !

वह अर्जुन थक गए थे। ठीक इसी तरह, जिस तरह दुःशला के सामने आकर थक गए थे। बल्कि उससे भी कहीं अधिक ! और तब उन्हें संभाला

था चक्रसुदर्शनधारी ने ! शब्द-सेतु बांधकर धनंजय को गिरते-गिरते संभाल लिया था।

श्रीकृष्ण का स्मरण करते ही लगता है कि एक शास्त्र का स्मरण कर रहे हैं। एक साथ ज्ञान, विज्ञान, योग और सत्य का स्मरण कर रहे हैं ! अनेक बार ऐसा हुआ है कि मित्र-भाव की समानता के स्तर पर बातचीत करते-करते भी अनायास अर्जुन को लगा है कि वह व्यक्ति के सामने नहीं, एक ज्योति के सामने बैठे हैं। ऐसी ज्योति जिसका आदि-अंत नहीं सूझता··· कहां से प्रारम्भ होती है और कहां तक जाती है— रहस्य !

श्रीकृष्ण तब व्यक्ति नहीं रह जाते, न मित्र रहते हैं, न केवल ज्ञानी। वे रूप, रस और गंध से परे केवल अनुभव हो जाते हैं। केवल आनंद। मात्र तृप्ति !

ऐसे अवसरों पर अर्जुन उन्हें देखते ही रह गए हैं, टकटकी बांधे हुए और वह हैं कि दृष्टि के पार, अनंत तक ज्योतित। उन्हें सहेज पाना कठिन, उन्हें सम्पूर्ण में पा सकना असम्भव !

कितनी-कितनी बार उनके स्मरण मात्र से इस ज्योति ने मन को हर द्वंद्व और दुविधा में मुक्ति दे दी है ? सुख, दुःख, शोक, आनंद सबसे परे कर दिया है ? उन्हीं को स्मरण करेंगे !

स्मरण-मात्र से श्रीकृष्ण अपने बहुत पास और कभी-कभी तो अपने ही भीतर अनुभव होते हैं···

दुःशला-प्रकरण की पीड़ा ने मन को जिस बोझ से भर दिया है, उससे बचाव का एकमात्र मार्ग हैं—श्रीकृष्ण ! उनका स्मरण ! अनुगत भाव से उनके प्रति समर्पण !

यह समर्पण ही शक्ति बनेगा उनकी। बनता भी रहा है···जब-जब विषाद ने मन घेरा है, जब-जब अज्ञान के कोहरों ने आंसुओं में नहलाने के लिए भावनाओं की बाढ़ पैदा की है, तब-तब श्रीकृष्ण एक आभा की तरह प्रकृति को भी चमत्कृत करते उपस्थित हो गए हैं। उनकी ओट में अर्जुन सुरक्षित !

अर्जुन के मोह में वह विरक्ति बने हैं, पराजय में जय, भावना में कर्तव्य, अज्ञान में ज्ञान और असत्य में सत्य !

अर्जुन को लगा था कि दृष्टि के सामने एक ज्योति जनम आई है, शीतल, चांदनी की तरह मन-आत्मा को गहरी शांति देती हुई ज्योति··· फिर यह ज्योति श्लोक की तरह उनके कानों में आ समाई है···श्रीकृष्ण का स्वर···

"मनुष्य जीवन दो खंडों में विभक्त है, सव्यसांची! पहला अव्यक्त और दूसरा व्यक्त! इस क्षण तुम केवल व्यक्त में जी रहे हो। देहधारण का व्यक्त सत्य! किंतु अनंत सत्य है जीव का दूसरा खंड --उसका जनमना और मृत्यु पाना। जनमने से पूर्व भी वह था और मृत्यु के बाद भी वह रहेगा! अतः उसकी व्यक्तता को लेकर विचार करना व्यर्थ है—मात्र मोह! इस मोहवश न तो सुखी होना उचित है, न दुःखी होना!"

स्तब्ध, शांत बैठे हैं अर्जुन रथ अपनी गति से बढ़ता जा रहा है। सारथी उसे यंत्रवत् चलाता हुआ, किंतु अर्जुन होकर भी अपने से बहुत दूर! उस महासमर की भूमि में जहां उन्होंने पहली बार वह ज्योति-दर्शन किया था···पहली बार उस अनुगत भाव को स्वीकार किया था, जिसे श्रीकृष्ण के सामने सदा ही अपने मन में अनुभव किया···[1]

---

१. (महाभारत) के भीष्म पर्व में अध्याय २५ से लेकर ४२ तक अर्जुन और श्रीकृष्ण की वह महत्वपूर्ण वार्ता आती है, जिसे गीता के रूप में जाना गया। गीता के ६२० श्लोक श्रीकृष्ण ने, ७५ अर्जुन ने और ६७ संजय ने कहे हैं। १ श्लोक राजा धृतराष्ट्र का भी है। सामान्यतः 'गीता' को लेकर यह कहा, लिखा गया है कि वह सारी वार्ता श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच उस समय हुई है जबकि कौरव-पांडव सेनाएं एक दूसरे के आमने-सामने थीं तथा अर्जुन का रथ दोनों सेनाओं के बीचोबीच था। पच्चीसवें अध्याय में श्लोक-क्रम २० से पच्चीस के बीच महाभारतकार ने लिखा है—"अपने धनुष को उठाकर अर्जुन श्रीकृष्ण से कहने लगे कि—'हे वासुदेव! दोनों सेनाओं के बीच मेरा रथ ले चलिए, मैं देखना चाहता हूं कि दुर्योधन का प्रिय करने के लिए, उसकी ओर से लड़ने कौन-कौन आए हैं?' श्रीकृष्ण ने वैसा ही किया।

दो सेनाओं के आमने-सामने के बीच खड़े होकर इतनी लम्बी वार्ता (गीता-वर्णित) किया जाना बहुत स्वाभाविक नहीं लगता। सम्भवतः अर्जुन का रथ लिए हुए श्रीकृष्ण उस समूचे ही रणक्षेत्र का अवलोकन करते रहे हैं, कराते रहे हैं, जहां तक कुरुक्षेत्र-युद्ध में कौरव-पांडव महारथी और उनकी सेनाएं बिखरी हुई थीं। जितना विशाल यह युद्ध बतलाया गया है उसमें कुरुक्षेत्र-युद्ध का मूल स्थान रहा और सम्पूर्ण महायुद्ध इस नाम भर से जाना गया होगा, जबकि युद्ध दूर-दूरंत सम्पूर्ण भारत में ही बिखरा हुआ था। —लेखक,

युद्धारंभ पूर्व सहसा ही मन में विचार आया था, देख तो लें उन्हें, जिनसे विभिन्न मोर्चों पर जूझना होगा ! श्रीकृष्ण से बोल पड़े थे, "वासुदेव ! तनिक रथ को उन क्षेत्रों में तो ले चलिए, जिनसे मुझे विभिन्न महारथियों, रथियों और समय-श्रेष्ठ योद्धाओं से लड़ना होगा ? देखूं तो वे कौन-कौन हैं ?"

और श्रीकृष्ण ने पल-भर की देर न कर रथ दूर-दूरंत दौड़ाना प्रारंभ कर दिया था।

तीव्र गति से रथ का चालन करते हुए श्रीकृष्ण क्रमशः उन सेनानायकों योद्धाओं को दिखाने लगे थे, जो कुरुक्षेत्र से पचासों मील दूर अनेकानेक मोर्चे बनाए हुए चारों ओर से पांडव-सेना पर आक्रमण के लिए तैयार थे।

कृष्ण ने कहा था, "देखा पार्थ ! भीष्म, द्रोण, दुःशासन, जयद्रथ, अश्वत्थामा ये सब इस युद्ध में उपस्थित हैं। इन सभी से तुम्हें केवल जय नहीं पानी हैं, इन्हें हत भी करना है।"

रथ तीव्रगति से दौड़ा जा रहा था और अर्जुन स्तब्ध रहे थे कुछ क्षण, फिर कुछ असहज हुए, और फिर अपने ही भीतर गलने लगे।

दृष्टि टिकाए हुए थे कृष्ण·· छीलती, बहुत गहरे तक कुरेदती चिर-परिचित ज्योतिवत् दृष्ट।

किंतु अर्जुन मन का आवेग रोकने में असमर्थ होने लगे थे। भीष्म ? कुल-पितामह भीष्म ? अर्जुन इनका वध करेंगे ?

मन से एक खंड टूटकर गिरता हुआ।

"और ये द्रोण ? आचार्य द्रोण ! जिनके हाथों ने अर्जुन को गांडीव-धारी बनाया है ? इन्हें भी मारेंगे अर्जुन ?"

"कई खंड दरक गए हैं मन के।"

"मामा शल्य ? नीतिज्ञ शकुनि ? कौरव बंधुओं का यह विशाल समूह ? इन सभी को हत करना होगा युद्ध में ?"

अर्जुन की सम्पूर्ण आत्मा ही रिसने लगी।

और फिर यह रिसन सहसा आंखों से बाहर को झरने को आकुल हो उठी। सहमकर अस्त्र रख दिए थे रथ में। बड़बड़ाए थे, "नहीं-नहीं, कृष्ण ! यह मुझसे नहीं होगा ! कभी नहीं होगा !"

कृष्ण सहज-सरल भाव से हंसे। सदा की तरह निर्दोष, निर्मल मुस-कराहट। पूछा, "क्या हुआ पार्थ?"

"ये·· ये सब हत होंगे इस युद्ध में?" अर्जुन बौखलाए हुए से बोल पड़े थे, "यह हमारे अपने, पितृ, पूज्य, बंधु, साथी, संबंधी? आत्मज? परिवार अंश? न-न, मेरे लिए इन पर अस्त्र उठाना असंभव है यशोदा-नंदन! नितांत असंभव!" थके-से माथा थामकर बैठ रहे।

"तुम किनकी बात कर रहे हो किरीटी!" श्रीकृष्ण ने बहुत सरल स्वर में प्रश्न किया था, "कौन से तुम्हारे बंधु-बान्धव, परिजन, सखा, कुटुम्बी? कौन? और कहां हैं वे?"

"वे सब! दूर-सुदूर भरत-खंड की सीमाओं और सीमाओं के पार तक ग्यारह अक्षोहिणी सेना के नायक बने हुए वे सब!" अर्जुन ने उत्तर दिया था, "इन्हीं सबका संहार करने उद्यत हैं हम सब? मैं इन्हीं की बात कर रहा हूं वासुदेव!"

"वे सब तुम्हारे शत्रु हैं अर्जुन!" श्रीकृष्ण ने रथ संभालते हुए उत्तर दिया था, "उनका वध करना तुम्हारा धर्म है!"

"किन्तु वासुदेव! वे सब मेरे अपने भी हैं?"

पुनः मुसकराए थे वह। कहा था, "इनकी देह नामधारी हैं अर्जुन! अन्यथा ये सब अनाम हैं—केवल जीवात्मा। न कोई इन्हें नष्ट कर सकता है, न ये नष्ट हो सकते हैं नष्ट केवल इनकी देह होगी पार्थ।" सहसा श्री-कृष्ण का हर शब्द एक प्रकाश की तरह अर्जुन की आत्मा में प्रवेश करने लगा था। अर्जुन यंत्रभाव से प्रश्न किए जा रहे थे और कृष्ण ज्योतिवत् अधिक और अधिक प्रकाशित होते हुए शब्द-ज्ञान दिए जा रहे थे।[1]

क्रमशः विभिन्न मोर्चों पर विभिन्न सगे-सम्बन्धियों, कुलाग्रजों को देखते बढ़ते युद्ध-रथ आगे और आगे चलता गया था। श्रीकृष्ण से उस ज्योति-प्राप्ति के कारण एक नयी दृष्टि मिली थी अर्जुन को। जीव-सत्य की दृष्टि! आत्मप्रकाश! इस आत्मप्रकाश में न जाने कितनी जिज्ञा-साएं सहसा उत्तर पा गई थीं, कितने प्रश्न सुलझ गए थे, कितने-कितने

---

1. 'गीता' सम्बन्धी अंश, इस कथामाला के १२वें खंड 'अनंत' में आएंगे।

रूपों में सत्य से साक्षात्कार हो गया था। और इस गीता-ज्ञान ने ही अर्जुन को कर्म-तत्पर कर दिया था! न भीष्म-वध में शोक हुआ था उन्हें, न कर्णांत से पीड़ित हुए थे और न ही द्रोण की समाप्ति ने उन्हें असंयत किया था।

वे व्यक्ति से अधिक केवल ज्ञान बन गए थे! और यह ज्ञान कर्तव्य-पथ को वायुगति से पार करता चला गया था। न मोह ने ठिठुकन दी थी, न भावना ने संकोच जनमा था, न उपलब्धि ने दंभ उपजाया था। सब सहज भाव से इस तरह करते गए थे अर्जुन जैसे संशय नामक शब्द न उनके पास कभी था, न कभी रहेगा!

युद्ध-जय कर लिया था उन्होंने!

जय के वाद किसी और तरह भावना, संवेदना, मोह, उपलब्धि सुख सभी कुछ जागृत होने लगे थे। वहुत तरह, बहुत बार, जाग उठते। हर बार श्रीकृष्ण के उन शब्दों का कोई अंश स्मरण करते। अनुगत होकर शान्ति सहेज लेते…

दु:शला से भेंट ने जो पीड़ा दी, उसकी वेदना का कोहरा भी श्रीकृष्ण के स्मरण से ही हटा लिया था।

सहज हुए!

पर कब तक सहज रह सकेंगे? मन ने जैसे प्रश्न पूछ लिया था।

लगा था कि बहुत समय नहीं। संसार के व्यक्त जीवन में कुछ-न-कुछ ऐसा आ जाएगा, जब फिर अशांत हो जाएंगे! युद्ध के बाद बहुत बार अशांत हो उठते थे। ऐसी अशान्ति के समय प्रयत्न करते कि श्रीकृष्ण द्वारा व्यक्त उस विराट ब्रह्मरूप का शब्द दर्शन करें, जो रणभूमि में मिला था; पर लगता था कि बहुत कुछ भूल चुके हैं। युद्धांत के बाद जब श्रीकृष्ण द्वारिका जाने लगे, तब पूछ भी लिया था अर्जुन ने। बड़े लज्जित और पीड़ित स्वर में बतलाया था, "वह सब मैं भूल गया, यशोदानंदन! एक

बार पुनः सुना दो ?"

और उत्तर में श्रीकृष्ण स्नेह से रुष्ट हुए थे। कहा था, "उस समय मैंने क्या-क्या बतलाया और कहा, वह सब ज्यों का त्यों तो याद नहीं है ··· फिर भी प्रयत्न करेंगे कि कुछ बतलाएं !" एक कथा के माध्यम से काफी कुछ बतलया भी था उन्होंने !

उसी सबको रह-रहकर सहेजते रहते हैं अर्जुन। वही शक्ति है उनकी। उसी शक्ति के अनुगत।

इस शक्ति ने जीवन में विविध स्थितियों और अवसरों पर साथ दिया है। अर्जुन संयत रहे हैं, अप्रभावित रहे हैं, सम्पन्न रहे हैं।

जब-जब विपरीत स्थितियां आ जाती हैं, तब-तब श्रीकृष्ण अपने दर्शन के साथ अर्जुन का अधूरापन भर देते हैं। संशय का मन में फैलता हर अंधकार एक ज्योति के सकेत भर से मिट जाता है। अर्जुन स्वयंजयी हो जाते हैं ! कृष्ण की मित्रता उनकी जय-शक्ति दुःशला से मिली पीड़ा पर भी इसी तरह स्वयंजयी हो गए थे धनंजय !

रथ तीव्रगति से दौड़ा जा रहा था। कितनी ही जगह विश्राम किया था, कितनी ही जगह रात्रि विताई। हर क्षण मित्र-स्मरण करते रहे। न करना चाहकर भी करते रहे।

याद आता है—एक बार इसी तरह कृष्ण से जुड़ाव को लेकर दुर्योधन ने व्यंग किया था उन पर, "धनंजय ! वह यशोदासुत की धूर्तता और कपट

---

१. महाभारत (अश्वमेध पर्व) में सोलहवें अध्याय के श्लोक-क्रम १ से १५ तक यह वर्णन आया है कि अर्जुन कथित यह वर्णन आया है कि वह युद्ध समय पर दिए गए गीता ज्ञान को भूल गए हैं। वह कहते हैं—" ··युद्ध-समय पर आपने मेरा प्रिय करके जो उपदेश मुझे दिया था, वह बुद्धि-दोष के कारण मैं भूल गया हूं तथा फिर से सुनना चाहता हूं।" श्रीकृष्ण ने यहां उत्तर दिया है कि—"मैंने उस समय अत्यंत गूढ़ विषय और नित्य लोकों का वर्णन किया था। तुमने उसे स्मरण नहीं रखा, इसका मुझे बहुत खेद है। उस समय मैंने जो उपदेश किया, उसकी इस समय मुझे याद नहीं है। तुम बड़े मूढ़ और श्रद्धाहीन जान पड़ते हो ?"

नीति पर आश्रित वीर। भला वह क्या सामना करेगा प्रतापी कर्ण का ?"

सुनकर बुरा लगा था अर्जुन को; किन्तु कुछ बोले नहीं थे। लगा था कि उत्तर में प्रतिक्रिया पूर्ण कोई बात कहकर अपने-आपको छोटा कर लेंगे। बुरा इसलिए नहीं लगा था कि दुर्योधन ने अर्जुन को अपमानित किया; किन्तु कृष्ण उनके मित्र—उन्हें कपटी और धूर्त कहा जाना अखर गया था।

सुना कृष्ण ने भी; किन्तु अर्जुन चकित हुए। न तो उनकी आंखों में बदलाव आया, न ही सहजता में। एक मुसकान उछालकर शांत हो गए थे।

अर्जुन पर रहा नहीं गया था, पूछा, "तुम इतने सहज शांत कैसे रह लेते हो कृष्ण ?"

हंसकर उत्तर दिया था कृष्ण ने, "इसमें कठिन क्या है कुन्तीसुत ?"

"क्रोध नहीं आना चाहिए ?"

"क्यों ?" कृष्ण ने पूछा।

"अरे ?" अर्जुन ने तनिक परेशान होकर कहा, "दुर्योधन उद्दंडता-पूर्वक हलकी बातें करे और तुम क्रोध भी न करो ? क्या यह कठिन नहीं है ?"

"कठिन क्यों है ?"

"मनुष्य प्रतिक्रियाहीन कैसे रह सकता है अनंत !" अर्जुन बात में और गहरे उतर गए।

कृष्ण ने बात को तल एक पहुंचा दिया था। उसी सहजता के साथ कहा था, "प्रतिक्रिया तो मुझे संचालित नहीं करती है धनंजय ? मैं प्रति-क्रिया को संचालित करता हूं। वह मेरे अधीन है, मैं उसके अधीन नहीं हूं। अतः कठिन क्या है ?"

अर्जुन आश्चर्य से उन्हें देखते रह गए थे। मन हुआ था कहें, "तुम अद्‌भुत हो निर्गुण !"

और सरल हंसी में हंसे थे कृष्ण। स्वर में उपेक्षा थी, "अरे, मित्र ! मैं अद्‌भुत तो तब होता, जब मुझे मेरी प्रतिक्रिया संचालित करती।"

बात हंसी में उड़ गई थी, पर अर्जुन विस्मृत नहीं कर सके थे। दुर्यो-

धन का कटाक्ष विस्मृत करना सहज लगा था उन्हें, किन्तु श्रीकृष्ण का उत्तर नहीं। निस्सन्देह असामान्य हैं वह।

पर यह कृष्ण की मैत्री में छोटी-छोटी वातें थीं। ज्ञान के छोटे-छोटे चुल्लू, जिन्हें सहज वार्ता, व्यवहार, गपशप के वीच श्रीकृष्ण उछाल दिया करते थे, और यही चुल्लू थे, जिन्होंने कृष्ण के प्रति अनजाने ही अर्जुन को सर्मपित कर दिया था। अनेक वार कह डालना चाहा था कृष्ण से, "मैं तुम्हारा अनुगत हूं, कृष्ण ! तुम्हारे ज्ञान की छाया ! तुम्हारे विज्ञान की अनुकृति ! तुम्हारे योग की वेदी।" पर नहीं कहा था।

और कहा था उस समय जव कृष्ण से गीता ज्ञान सुनने मिला। हर जिज्ञासा और हर प्रश्न के उत्तर में सत्य की ऐसी ज्योति से नहलाते गए थे श्रीकृष्ण कि अन्त में विह्वल भाव से अर्जुन उनके सामने नतशिर हो गए थे।

"....अच्युत ! तुम्हारी कृपा से मेरा सारा मोह मिट गया। मुझे पूव स्मृति प्राप्त हुई। मेरे सव संशय दूर हो गए। अव मैं तुम्हारा अनुगत हूं। वही करूंगा, जो तुम करोगे भगवन !"

श्रीकृष्ण ने हृदय से लगा लिया था उन्हें। वह स्मरण करते हैं तो लगता है कि इस समय भी श्रीकृष्ण उन्हें हृदय से लगाए हुए हैं। यहीं स्मरण युद्ध-पश्चात् कर्म पथ पर अर्जुन को दौड़ाए जा रहा है।

अश्वमेधयज्ञ का संदेश लिए अर्जुन की सैन्य-यात्रा आगे वढ़ चली। प्रतापी गांडीवधारी की यह जय-यात्रा अपरोक्ष रूप से कुरुराज युधिष्ठिर की वट-शक्ति के छांव तले सम्पूर्ण भरत-खंड के एकत्रीकरण की यात्रा थी ! एक संदेश था जीवन-मूल्यों और समाज-पद्धति का जो दूर-सुदूर विखरे छिटके आर्यों को एक माला में संजोना चाहता था !

अर्जुन माला की एक-एक मणि को जुटा रहे थे। संवंधों, कुटुम्बों से सव जुड़े हुए थे; किन्तु राजनीतिक रूप से विखरे हुए। अर्जुन इस विख-

राव को सहेजने-समेटने ही चले थे। सम्पूर्ण आशीर्वाद और समर्थन था श्रीकृष्ण और वेदव्यास का।

सिन्धु क्षेत्र के अनेक राजाओं को माला में पिरोकर अर्जुन तीव्रगति से आगे और आगे बढ़ते गए। अधिकतर स्थानों पर राजाओं ने आगे बढ़कर समय के सर्वशक्ति मान योद्धा का स्वागत किया। उनका स्नेहामंत्रण स्वीकारा; किन्तु अनेक स्थान थे, जहां अर्जुन को शक्ति से युधिष्ठिर की श्रेष्ठता और सत्ता का अनुभव कराना पड़ा।

इन्हीं में एक था मणिपुर ![1] कलिंग देश !

कलिंग की सीमाओं को तीन ओर से अर्जुन की सेनाओं के विशाल पड़ाव ने घेर लिया। दूत पठाया गया और उत्तर की प्रतीक्षा की जाने लगी।

कुछ समय बाद उत्तर मिला था, "कलिंगराज बभ्रुवाहन स्वयं आ रहे हैं !"

अर्जुन के भीतर एक झरना झर उठा था···बभ्रुवाहन ! अर्जुन पुत्र बभ्रुवाहन !

किन्तु आ क्यों रहा है बभ्रुवाहन ? सहसा अर्जुन के भीतर से एक तिलमिलाता हुआ प्रश्न उठ आया था। क्या अर्जुन की वीरता ने उसमें दास भाव जगाया है ? क्या युद्धज अर्जुन का वीर्यांश कायर है ?

जिस क्षण मणिपुर की सीमा पर आकर अर्जुन ने अश्वमेधयज्ञ में भाग लेने के लिए राजा बभ्रुवाहन को संदेशा भिजवाया, उस समय यही आशा की थी कि उत्तर में बभ्रुवाहन से वही राजगरिमा भरा युद्धामंत्रण मिलेगा जो वीर पुत्र देते हैं। युद्ध में हारकर भले ही बभ्रुवाहन यज्ञ में सम्मिलित

---

१. मणिपुर : कलिंग देश की राजधानी।
कलिंग—उड़ीसा के दक्षिण और द्रविड़ के उत्तर का समुद्र तटवर्ती प्रदेश था।
द्रविड़ देश—वर्तमान तमिलनाडु। महाभारत काल के द्रविड़ देश की सीमा उत्तर की ओर गोदावरी तक थी।

होना स्वीकार करता; पर इस तरह समर्पण ? लगा था कि नितांत दास-भाव है।

धनंजय ने अपने-आपको अपमानित अनुभव किया था। उससे कहीं अधिक पीड़ित ! सोच में पड़ गए थे वह क्या चित्रांगदा में ही वीर गौरव नहीं था, जिसके कारण बभ्रुवाहन में ऐसा कायर भाव पैदा हुआ ? अथवा अर्जुन के भीतर कहीं ऐसा पौरुष दोष छिपा है ?

नहीं। निश्चय ही नहीं। लगा था कि न उनमें कभी यह दोष रहा, न ही चित्रांगदा ऐसी हो सकती हैं।

तब बभ्रुवाहन का इस तरह आना ?

पुनः अशान्ति से घिर गए थे वह ! इस अशान्ति ने जीवन भर रण-क्षेत्रों में सिंह भाव से घूरते रहे अर्जुन के वीर-जीवन पर सदा ही अपनी काली छाया फैलाए रखी है। कभी किसी संवेदनात्मक स्तर पर। किसी अपमान की अग्नि पर और किसी बार जय में मिली पराजय का दर्शन करके !

बभ्रुवाहन ने अनायास ही एक नयी अशांति से भर दिया है मन। जिस क्षण संदेशा भिजवाया था, उस क्षण लगा था कि उनका पुत्र बभ्रुवाहन पुत्रभाव से नहीं, एक राजा की गरिमा के भाव से ही मिलेगा। उसके हाथ में अस्त्र होंगे, चारों ओर रणाकुल सेना ! भला वह कैसे भूल सकेगा कि कलिंग की स्वतंत्र राजसत्ता का स्वामी है वह। महान् कलिंग का राजा ! वीरपुत्र !

पर उत्तर में विचार के विपरीत समाचार पाया था अर्जुन ने। आहत हो उठे थे।

क्या चित्रांगदा ने जाति और देश गौरव स्मरण नहीं दिलाया अपने पुत्र को ? या उसे संस्कार नहीं मिले ? यह सब हुआ होता, तब भला क्षत्रिय धर्म से विमुख व्यवहार कैसे कर सकता था वह ?

अभी भी विश्वास नहीं कर पा रहे थे कि दूत से जो समाचार मिला है, वह सच है। पुनः बुलवा लिया था उसे। पूछा, "क्या सच ही राजा बभ्रुवाहन ने स्वयं उपस्थित होने को कहा है ?"

"हां, श्वेतवाहन। वह स्वयं आ रहे हैं।" दूत ने विनम्रता से उत्तर

दिया था।

आश्चर्य !" अर्जुन बुदबुदाए। स्वर में खिन्नता थी, पर इतने धीमे बोले थे कि दूत सुन नहीं सका। कहा था, "तुम जा सकते हो दूत !"

दूत ने विनम्रता से शीश नवाया। बाहर चला गया।

अजब दोहरा होकर सोचने लगा है मन·· बभ्रुवाहन को देखने की इच्छा है ! सुन्दरी चित्रांगदा और अर्जुन की कृति ! कैसा होगा वह ? उसकी आंखें ? शरीर ? रंग ? बल ?

सहसा ही चित्रांगदा स्मृति में उभर आई हैं और चित्रांगदा के साथ ही वह कालखंड, जिसने उनकी उससे भेंट करवाई थी और कालखंड से जुड़ी वे समूची घटनाएं, जब अर्जुन भाइयों के बीच निश्चित नियम तोड़ बैठने के कारण स्वयं को ही दंडित कर रहे थे। स्वयं ग्रहण किया था बारह वर्ष का वनवास !

कुन्ती की आज्ञानुसार द्रौपदी को पांचों भाइयों ने पत्नी बनाया था। पांचाल में ही थे तब। संयोगवश नारद ने एक खतरे से सावधान किया था उन्हें। तिलोत्तमा[1] की कथा सुनाकर द्रौपदी को लेकर भाइयों में वैमनस्य न हो—चेतावनी दी थी।

उस चेतावनी के कारण सभी ने निश्चय किया था कि एक निश्चित समय तक द्रौपदी हर भाई के साथ पत्नी-रूप में रहा करेंगी। एक भाई यदि द्रौपदी के साथ एकांत में बैठा होगा, तब दूसरा वहां न जाएगा। ऐसा करने पर प्रायश्चित भी निश्चित कर लिया था उन्होंने !

प्रायश्चित था—बारह वर्ष का वनवास !

वहीं से उस कालखंड का इतिहास बना था। वही प्रायश्चित ! अब भी चित्रवत स्मरण आ गया है अर्जुन को। निश्चित नियम के अनुसार द्रौपदी उस समय महाराज युधिष्ठिर के साथ थीं। जिस कक्ष में दोनों

---

१. नारदवर्णित तिलोत्तमा की कथा—इस उपन्यास-शृंखला की छठी कड़ी 'आहुति' में पृष्ठ-३५ पर वर्णित है।

एकांत-चर्चा कर रहे थे, उसमें अवश अर्जुन को जाना पड़ा था।

कुछ चोरों ने ब्राह्मण की गायें चुरा ली थीं। सीमा से बाहर निकल जाए, इसके पूर्व ही ब्राह्मण अर्जुन के पास आ पहुंचा था, "पांडुपुत्र! किसी तरह उन दुष्टों से गौ-धन की रक्षा करो! ब्राह्मण का सर्वस्व वही हैं!"

और अर्जुन उलझन में पड़ गए। क्या करें? निहत्थे थे उस समय। हथियार उस कक्ष में रखे थे, जिसमें युधिष्ठिर और कृष्णा एकांत वास कर रहे थे। दुविधा खड़ी हो गई थी उनके सामने।

क्या वचन तोड़कर वह पाप के भागी बनेंगे? बड़े भाई और उनकी पत्नी के प्रति दोषी हो जाएंगे?

किन्तु इस ब्राह्मण की प्रार्थना? इसकी अधिकार रक्षा? यह भी तो अर्जुन का क्षत्रिय धर्म है?

ब्राह्मण निरंतर याचना कर रहा था कि उसकी गायें बचा ली जाएं। दोषियों को दंडित किया जाए।

सम्पूर्ण मन-चेतन से उचित का निर्णय लिया था। स्वयं कष्ट भोगकर भी यदि ब्राह्मण के प्रति अपना दायित्व निबाह सके, तब वही धर्म रक्षा होगी! निर्द्वंद्व होकर उस कक्षा में प्रवेश कर गए थे।

युधिष्ठिर कृष्णा वार्ता मग्न थे। अर्जुन के प्रवेश ने उन्हें चकित किया था; किन्तु अर्जुन ने उनकी ओर देखा तक नहीं था। तेजी से कक्ष में एक ओर रखे अस्त्र-शस्त्र उठाकर बाहर निकल गए थे।

चोरों से गायें वापस लाकर अर्जुन ने ब्राह्मण को सौंपी थीं और स्वयं वचन-भंग के दोष में दंडित होने तैयार हो गए। सिर झुकाए हुए युधिष्ठिर के सामने जा पहुंचे। कहा, "भइया! मैं नियम-भंग का अपराधी हूं; किन्तु जो स्थिति थी, उसने मुझे क्षत्रिय धर्म के कारण बाध्य किया।" संक्षेप में ब्राह्मण वाली बात कह सुनाई थी, फिर वनवास के लिए तत्पर हुए।

युधिष्ठिर ने शान्त होकर सुना था सब। कहा, "इसमें दोष नहीं हुआ बन्धु!"

"क्यों?"

“मेरे विचार में दोष अदोष का निर्णय घटना पर नहीं, उसके मूल संदर्भ में होता है अर्जुन। और देखता हूं कि समाज दायित्व ब्राह्मण के प्रति अधिक मूल्यवान था। यों यह भी एक व्यवस्था है कि बड़ा भाई यदि स्त्री के साथ बैठा हो, तो छोटे भाई का वहां आ पहुंचना अनुचित नहीं है। हां, यदि छोटा भाई अपनी स्त्री के साथ एकांत में हो, तब बड़े भाई का वहां पहुंचना मर्यादा भंग करना है। अतः तुमसे कोई पाप नहीं हुआ। अपने मन को शांत कर लो।”

“किन्तु भईया !” अर्जुन ने कुछ कहना चाहा। युधिष्ठिर ने स्नेहपूर्वक बतलाया था, “तुम निष्पाप हो अर्जुन !”

“पर मैं ऐसा नहीं मानता अग्रज !” अर्जुन ने कहा था, “नियम-भंग मेरी दृष्टि में दोष है और मैं उसका प्रायश्चित अवश्य ही करूंगा !”

बहुत समझाया था युधिष्ठिर ने, किन्तु अर्जुन शान्त नहीं हुए थे। प्रायश्चित स्वरूप उन्होंने वनवास ले लिया था।

इसी घटना ने अर्जुन के जीवन में घटनाओं का एक अन्तहीन सिलसिला बना दिया। ऐसा सिलसिला, जिसे खंड-खंड, अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग तरह भोगा है उन्होंने।

वनवास-यात्रा का वही काल-खंड है, जब अर्जुन से चित्रांगदा की कथा जुड़ी, उलूपी उनके जीवन का प्रसंग बनी, पराक्रमी अभिमन्यु की माता सुभद्रा का वरण किया, श्रीकृष्ण के सम्बन्धी हुए।

उस सबको स्मरण करते हुए अर्जुन को अच्छा लगा। बहुत अच्छा लग रहा है। आयु के इस मध्य प्रहर में प्रवेश के साथ ही विगत का हर बीता पल कैसा रोमांचकारी लगने लगता है? अर्जुन ने सोचा। एक गहरा सांस लिया। मन को पुनः स्मृति-यात्रा की ओर बढ़ाया।

प्रायश्चित का वह वनवास का ! अभी स्मृति-पद आगे बढ़ाना ही चाह रहे थे कि सेवक उपस्थित हुआ।

“राजन ! कलिंगराज बभ्रुवाहन उपस्थिति का निवेदन करते हैं।”

अर्जुन का चेहरा तमतमा उठा। जबड़े कस गए। उत्तेजित होकर कहा, “ठीक है ! उनसे कहो कि वह वहीं रहे। हम स्वयं आ रहे हैं !”

सेवक गया। कुछ पल बाद श्वेतवाहन भारी कदमों से शिविर के

ब्राह्मणों से घिरे हुए, सेवक-सेविकाएं चमकते स्वर्ण थालों में वीर अर्जुन के स्वागतार्थ फूल मालाएं रखे हुए, इत्र-धूप से सुगंधित वातावरण। बभ्रुवाहन अर्जुन को देखते ही आदरपूर्वक हाथ बांधे उनके सामने आ खड़े हुए। अभी चरणों की ओर झुके ही थे कि अर्जुन का तीखा कौंधती बिजली जैसा स्वर उन पर गिरा।

"धिक्कार है ! धिक्कार है तुम पर !"

वातावरण में सहसा ही सन्नाटा बिखर गया। अर्जुन के शब्दों से बभ्रुवाहन जितना चौंके उससे कहीं अधिक उनके साथ आए लोग सहम गए। इधर-उधर खड़े सेनानायकों में सनसनी बिखर गई।

अर्जुन क्रोध और उत्तेजना से भरे हुए कहे गए थे, "देखता हूं मणिपुर राज ! तुम कायर की तरह मेरे स्वागतार्थ उपस्थित हो। निश्चय नहीं कर पा रहा हूं कि तुम्हें स्त्री कहूं या पुरुष ?"

"पर पितृ !" बभ्रुवाहन ने कांपते स्वर में कुछ कहना चाहा था। चेहरा पिट गया था उनका। उससे कहीं अधिक आश्चर्य दृष्टि में बिखरा हुआ। भला अर्जुन उनके पिता, उनसे ऐसा तिरस्कारपूर्ण व्यवहार क्यों कर रहे हैं ?

और अर्जुन के अगले शब्दों ने कारण बतला दिया था, "मैं पिता के नाते नहीं, कुरु जंगल के महाराज युधिष्ठिर के सेनानायक की तरह तुम्हारे राज्य-क्षेत्र में आया हूं ! यह विचार तक मेरे लिए अल्पनीय था बभ्रुवाहन कि तुम इस तरह कायर भाव से समर्पण करोगे ? मुझे प्रसन्नता होती यदि तुम मुझे युद्ध की चुनौती देते ? तुम्हारे लिए यही शोभाजनक था क्षत्रियपुत्र ! पर।" सहसा अर्जुन की अपनी आवाज लड़खड़ा उठी थी। लगा था कि वह किसी युद्ध में पराजित हो चुके हैं ! अपने से ही थके हुए भर्राए स्वर में कहा था, "तुमने बहुत बड़ा दोष किया कलिंगराज ! मैं तुम जैसा पुत्र पाकर अपने-आपको अपमानित अनुभव कर रहा हूं !"

बभ्रुवाहन का सिर झुक गया था। लगा था कि स्वर्ण की तरह दम-

दमाती राजस देह पर स्याही कालिख बनकर चढ़ गई है। कसमसाकर रह गए थे।

"जाओ बभ्रुवाहन ! राजा के योग्य व्यवहार करो ! स्मरण रहे कि पिता हो या पुत्र, सगा हो या सम्बन्धी; किन्तु शस्त्र-सैनिकों से युक्त होकर यदि वह किसी राजा के राज्य में पहुंचता है, तब राजधर्म यह है की वीर की भांति उसे युद्धामंत्रित किया जाए !"

बभ्रुवाहन ने एक गहरा श्वास लिया था—मुड़ गए। उनके साथ-साथ उनके सेवक-सेविकाएं और राजपोषित ब्राह्मण।

अर्जुन एक घाव-जैसी टीस पीते हुए अपने कक्ष में लौट पड़े। क्रोध ने शरीर का जल सुखा दिया था। गला चिटचिटाया। सेवक से जल मंगाकर पिया और थके-से लेट रहे।

पुत्र को राजधर्म का उपदेश कर दिया था उन्होंने और अब प्रतीक्षा करेंगे कि परिणाम क्या होता है ? मन-ही-मन ईश्वर-स्मरण किया था—"भगवान् ! मेरा पुत्र मेरे योग्य व्यवहार करे ! उसका निर्णय मुझसे युद्ध हो।"

पलकें मूंदकर लेट गए थे। सेवक भोजन के लिए पूछने आया, तब अन्यमनस्क भाव से कहा था—"भूख नहीं है !"

बभ्रुवाहन को उन्होंने देखा है। कोमल, सुकुमार और राजस तेज से भरा युवक। चेहरा बहुत कुछ चित्रांगदा पर ही गया है, शरीर गठन अर्जुन पर। दृष्टि में कोमलता नहीं है—एक पौरुषेय तेज।

भले ही क्रोधित हुए हों अर्जुन; किन्तु पुत्र को देखकर उन्हें प्रसन्नता हुई है यह प्रसन्नता उस क्षण हजारों गुना बढ़ जाएगी जब कलिंग की ओर से अर्जुन को युद्ध की चुनौती मिलेगी !

एक बार पुनः अर्जुन उसी लड़ी से जुड़ गए हैं, जिसे कुछ पल पूर्व बभ्रुवाहन के स्वागत ने तोड़ दिया था।

स्मृति मोतियों की वह दमदमाती माला ! इस माला में बहुत से नगर गुथे हैं। बहुत से राज, बहुतेरे चेहरे···उनके नाम···।

सबसे पहले हरद्वार पहुंचे थे अर्जुन—और वेदपाठी ब्राह्मणों के साथ तपस्वी भाव से रहना प्रारम्भ किया था। भोर समाज-धर्म-शास्त्र के साथ प्रारम्भ होती, सन्ध्या में ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाताओं की सभा-वार्ता सुनते। बहुतेरे निष्कर्ष पाते, बहुतेरे प्रश्न पूछते, उत्तर पाते। स्वयं भी जीवनचर्या वैसी ही बना ली थी। गंगा किनारे बैठकर ईश्वराधन करते, योगाभ्यास में समय बिताते।

लग रहा है जैसे इस क्षण भी गंगा-किनारे जा पहुंचे हैं···सूर्य किरणों की कोमल अंगुलियों से प्रकृति को दुलराते हुए हौले-हौले दूर पर्वतों से प्रकट हो रहे हैं···एक चमचमाता हुआ उजाला चारों ओर बिखरता जा रहा है।

"देव !"

अर्जुन चौंक पड़े।

सेवक सामने था।

अर्जुन ने कुछ चिढ़कर प्रश्न किया था, "क्या हुआ ?" इस विचार से झुंझला गए थे कि विगत के सुहावने स्मृति-चित्र को तोड़ दिया उसने।

"राजा बभ्रुवाहन के सम्बन्ध में एक गुप्तचर आपसे तुरन्त भेंट चाहता है।"

अर्जुन उठे। सतर्क होकर बैठ रहे। स्मृति मोतियों की माला गले डालने की तुलना में उनका सैन्यधर्म अधिक आवश्यक है। वही प्रथम।

गुप्तचर उपस्थित हुआ।

"क्या समाचार है ?"

"राजा बभ्रुवाहन आपसे उपदेश पाकर बहुत खिन्नमन रहे हैं पांडवराज !" गुप्तचर ने बतलाया था, "मुझे समाचार मिला है कि इस खिन्नता में उलूपी नामक एक नाग-स्त्री ने उन्हें युद्ध के लिए उत्तेजन दिया है।"

"उलूपी ? यहां ?"

"हां, राजन !" गुप्तचर ने कहा, "कौरव नामक नाग की बेटी है वह।

अति-सुन्दरी, गौरवशालिनी और··।"

आगे कुछ कहे, इसके पहले ही अर्जुन ने कह दिया था, "हमें ज्ञात है गुप्तचर ! तुम केवल यह बतलाओ कि बभ्रुवाहन को क्या सन्देश दिया है नाग-स्त्री ने ?"

"कहते हैं कि वह नागक्षेत्र से भ्रमण करती हुई मणिपुर आई है, महारानी चित्रांगदा की सहेली हैं वह। कलिंग के राजमहल में ही रह रही हैं। उन्होंने राजा बभ्रुवाहन को सलाह दी है कि वह आपसे युद्ध करें।"

"सुनकर प्रसन्नता हुई गुप्तचर !" अर्जुन ने कहा, "देवी उलूपी ने राजपुरुषों के योग्य सलाह दी है और बभ्रुवाहन किस निर्णय पर पहुंचे हैं ?"

"यह सूचना भी है देव कि बभ्रुवाहन युद्ध की तैयारियां कर रहे हैं।" गुप्तचर ने बतलाया।

"उचित है।" अर्जुन ने कहा, गुप्तचर का समाचार समाप्त हो गया था। वह लौट गया।

अर्जुन का मन सूचना से बहुत कुछ हलका हुआ। बहुत शान्त। पुनः विश्राम करने लगे। पलकें मूंदकर विगत से जुड़े।

उलूपी ने अनायास मणिपुर में उपस्थित होने की सूचना ने विगत के उस स्मृति-चित्र को गति ही नहीं एक सुन्दर आकार भी दे दिया है। अर्जुन के उस प्रायश्चितकाल में यदि हरद्वार पहला स्थान था, तो उलूपी पहला चेहरा, जो उनके करीब आया···वह दिन !

हरद्वार।

सदा की तरह उस दिन भी अर्जुन सूर्योदय का वह सुहावना दृश्य देखने गंगा किनारे घूमते हुए दूर पहाड़ियों में निकल गए थे। निश्चय किया था कि लौटकर हवन आदि करेंगे। सूर्योदय की मुलायम किरनों को गंगा के भीतर उतर कर ही देखेंगे।

नदी में उतरे तो अनायास ही दृष्टि अटककर रह गई थी। कुछ दूर, एक सुन्दर सुगठित शरीरवाली युवती स्नान कर रही थी। बदन पर नाम-मात्र के कपड़े थे। सो भी जल से भीगकर गोरे शरीर पर चिपके हुए। इस चिपकाव ने यौवनपूर्ण मादकता को अजीब से उत्तेजक आकर्षण से भर दिया था। अर्जुन के भीतर कुछ खिल उठा, फिर कामना के इस खिले फूल से उन्होंने मन पर एक नशा अनुभव किया।

सुन्दरी मछली की तरह तेज तैरती हुई गंगाजल में उनसे दूर, विपरीत दिशा में चली जा रही थी। संभवतः अर्जुन को भी उसने देख लिया था। शरीर वायु के झोंके जैसा तिरता हुआ।

अर्जुन उसी ओर बढ़े। बढ़े या उसीने खींच लिया—निश्चय कर पाना कठिन था? बस, लग रहा था, जैसे अर्जुन को युवती की सुकुमार, रसीली देह बेसुध बनाए हुए खींचे ले जा रही है।

धारा चीरते हुए दूर-बहुत दूर तक उसीं के पीछे चले गए थे वह। सुन्दरी ने तैरने का वेग कम कर दिया था। संभवतः जल-यात्रा में वह थकने लगी थी। इस थकान ने आकर्षण दूना किया। अर्जुन ने गति बढ़ा दी। बढ़ाई या स्वयं ही बढ़ गई? ज्ञात नहीं। बस इतना ज्ञात है कि जब सुन्दरी के पास, बहुत पास पहुंचकर किनारे लगे, तब किसी अपरिचित क्षेत्र में आ पहुंचे थे।

कहां हैं और कैसे चले आए हैं? तय नहीं कर पा रहे थे। सूर्य की किरनें तीव्र हो गई थीं और युवती भीगे वदन जल से बाहर आकर जैसे बिजली की तरह दमदमाती हुई दृष्टि के सामने थी। आंखें आमंत्रण देती हुईं, शरीर कामनाओं का ज्वार जगाता हुआ, अर्जुन ठगे-से खड़े रह गए! इतना सौन्दर्य। ऐसा आकर्षण! और मोहक मुसकान! श्वास सम्हालते हुए पूछ लिया था—"यह कौन-सा क्षेत्र है सुन्दरी!"

"कौरव्य नाग[1] का क्षेत्र है राजन !"

"तुम मुझे जानती हो ?" चकित हुए अर्जुन।

"हां।"

"कैसे ?"

"इस क्षेत्र में प्रतापी भीष्म और कुरु-राजकुल के राजकुमार रहें और उन्हें न जाना जाये, यह कैसे हो सकता है धनंजय ?" उलूपी ने सरल मुसकान के साथ उत्तर दिया था। हौले-हौले वह अपने अंगों पर मोतियों की तरह ठहरीं, झूलतीं जलबिन्दुओं को साफ कर रही थी।

अर्जुन मुग्ध होकर उसे देखते रहे। लगता था जैसे मन भर नहीं रहा है। सौन्दर्यमयी कन्या को देखकर। पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है सुन्दरी ?"

"उलूपी।"

"वंश परिचय ?"

"मैं नाग कौरव की बेटी हूं, कुन्तीसुत !" उलूपी ने बतलाया, "और हम लोग ऐरावत नाग के वंशज हैं।".

"तुमसे भेंटकर सुख मिला।"

"मुझे भी।" वह सहसा ही दृष्टि में अजब-सा लगाव भरकर बोली थी।

अर्जुन संयत हुए। याद आया---उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना

---

१. महाभारत में सैकड़ों ही स्थानों पर नागवंशियों की उपस्थिति बतलाई गई है। अन्य ग्रन्थों ने भी आदि-जाति के रूप में नागों का वर्णन किया है। सिद्ध है कि उस समय बड़ी संख्या में पायी जाने वाली नाग जाति के लोग छोटे छोटे कबीलों और कबीलों की सत्ताओं के रूप में भरत-खंड के विभिन्न हिस्सों में जहां-तहां बिखरे हुए थे। कौरव्य नाग निश्चय ही ऐसे किसी कबीले का मुखिया (राजा) रहा होगा। जंगली जीवन जीते रहने वाले नाग जाति के स्त्री-पुरुषों का जीवन कष्ट-साध्य होता था। इस जीवन में ही उन्होंने आयुर्वेद की अनेक औषधियों की जानकारी की होगी, जिनका वर्णन व्यास कृत ग्रन्थ में जहां-तहां आया है। ऐरावत एक नागवंशी चरित्र है और विभिन्न स्थानों पर उनकी चर्चा आई है। ऐरावत का क्षेत्र इक्षुमती नदी के पास बतलाया गया है। इक्षुमती—काली नदी कहलाती है, जो मुजफ्फरनगर से निकलकर कन्नौज के पास गंगा में मिली है।

है। यह नियम में भले ही न रहा हो, किन्तु युधिष्ठिर की आज्ञा थी। दृष्टि चुराकर कहा था, "नागकन्या ! यह मेरा हवन का समय है। मैं चलता हूं।"

"वह व्यवस्था यहां भी हो जाएगी पांडुपुत्र !" उलूपी ने कहा था, फिर बतलाया, "समीप ही मेरे पिता का हवन-कुंड है। तुम अपनी आराधना-साधना वहां पूर्ण कर सकते हो।

अर्जुन कुछ नहीं बोले। उलूपी आगे चली, तो चुपचाप पीछे हो लिए थे। कौरव नाग के हवन-कुंड में उन्होंने अपना हवन पूर्ण किया था। इस सब में बहुत समय बीत गया। लौटने को हुए तब सुन्दरी उलूपी पुनः उनके पास आ खड़ी हुई थी। दृष्टि में स्पष्ट कामेच्छा लिए। कहा था, "पांडव ! मैं तुमपर आसक्त हूं और···और मेरी इच्छा है कि तुम मुझे आत्मसमर्पण करो।"

अर्जुन अचकचा गए। मन द्वन्द में घिर गया था। उलूपी के सौन्दर्य ने उनके भीतर भी उसे प्राप्त करने की इच्छा जगाई थी; किन्तु बड़े भाई के निर्देश ने हर कामना का रसमय तार सहसा सुखा दिया। सत्य सामने रखते हुए कहा था, "बोलो, देवी ! कैसे मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर सकता हूं। वचन भंग करना भी तो पाप होगा और देखता हूं कि तुम्हारी कामना पूरी न करके भी पापी बनूंगा।"

"पुरुषश्रेष्ठ !" उलूपी सहसा उनके बहुत करीब आ गई थी। इतनी कि उसकी शरीर-गन्ध अनुभव कर पा रहे थे धनंजय ! कहा था, "मैं तुम पर आसक्त हूं, आर्य ! और मेरी इच्छा का निर्वाह ही तुम्हारा पुण्य धर्म है ! इस तरह तुम किसी रूप में न तो समाज लांछित होओगे और न ही तुम्हें कोई दोष लगेगा। यह प्रस्ताव मेरा है पुरुषसिंह ! मुझे स्वीकार करो !"

निरुत्तर हो गए थे अर्जुन। यही क्यों, उन्होंने स्वयं को उलूपी की इच्छा के आगे समर्पित कर दिया था या यों कि उलूपी की चाहना के अनुसार उसे स्वीकार कर लिया था।

सब सहज था, सब साधारण। असाधारण था, तो केवल इस कारण कि उन्होंने उलूपी का वह स्वर्गिक समर्पण, रोमांचक स्पर्श, और उत्साह-

पूर्ण अभिसार अपने स्मृति कोश में [illegible] की तरह संजो लिया था।

अब तक संजोया हुआ है और वही उलूपी, बरसों बाद कलिंग में आई हैं।

चित्रांगदा के साथ है उलूपी। अर्जुन और चित्रांगदा के पुत्र को वीरोचित उपदेश दिया है उसने। अनायास ही उलूपी के प्रति रोमांचक रहा स्मरण सहा विगत सहसा श्रद्धा बन गया है। निस्संदेह उलूपी ने अर्जुन की पत्नी के योग्य व्यवहार ही किया है।

मन उलूपी से मिलने को आतुर हो उठा है। अर्जुन उठे और पुनः कक्ष में व्यग्र भाव से चहलकदमी करने लगे हैं।

और इसी क्रम में हैं चित्रांगदा। राजा चित्रवाहन की पुत्री ! सुन्दरी चित्रांगदा !

लगा था कि रह-रहकर उलूपी और चित्रांगदा अर्जुन के आसपास उभर आती हैं। उनके साथ हैं वरसों पूर्व बीते दिन, रातें और कोमल-स्वप्निल भावनाओं की अनन्त स्मृतियां।

सहसा इच्छा हुई थी कि कुछ समय शिविर-कक्ष से हटकर एकांत में बिताएं तीव्रगति से शिविर के बाहर आ गए। सेवक, सैनिक, अंगरक्षक सभी सतर्क हो गए थे। अर्जुन बिना किसी से कुछ कहे, तेजी से एक ओर चल दिए। सूर्यास्त की वेला थी।

अंगरक्षक साथ हुए, तो टोक दिया था उन्हें, "नहीं। मैं नितांत एकांत चाहता हूं।"

वे लौट गए थे।

अर्जुन दूर, सघन जंगल में जा निकले···

गो-धूलि की इस बेला में सब कुछ सुहावना लग रहा था। सूर्य कलिंग के आकाश में समुद्रपार धीमे-धीमे विदा होता हुआ और उसी के साथ विदा हो रहा था अर्जुन का यह आगत। बढ़ते धुंधलके के साथ वे क्षण सजीव हो उठे थे, जब हरद्वार से चले थे धनंजय।

वह अपरोक्ष रूप से अर्द्ध-भारत-दर्शन था। कभी-कभी लगता है, जैसे उस दर्शन ने अर्जुन की जय-यात्रा सहज कर दी है। वह भ्रमण एक राजनीतिक उपलब्धि बना था उनके लिए।

अगस्त्यवट, वशिष्ट-पर्वत, भृगुतुंग पर्वत और नैमिषारण्य से होते हुए वे आगे और आगे बढ़ते चले गए थे। अनेक पवित्र स्थान देखे थे। वहां के निवासी, उनके रीति-रिवाज राजनीतिक क्षमताएं, राज्यों की सीमाएं, शक्ति सभी कुछ का अनुमान लेते हुए अर्जुन महेन्द्र पर्वत तक आ पहुंचे थे।[1]

महेन्द्र पर्वत·· कलिंग देश का क्षेत्र। राजा चित्रवाहन की सुन्दर, मणिमय नगरी — मणिपुरी।

चित्रांगदा को यहीं पाया था उन्होंने।

याद आता है, एक रोमांच की तरह सब कुछ याद आता है। ऐसी ही एक गो-धूलि बेला थी, जब अर्जुन का भव्य रथ मणिपुर की सीमा में पहुंचा था और उसके पूर्व उनके इस ओर आने का समाचार नगर में आ चुका था मणिपुर के गुप्तचरों ने उन्हें लेकर सभी सूचनाएं पहुंचा दी थीं।

पांडुपुत्र के वीरत्व और पराक्रम की कहानियां तब तक किंवदन्तियों की तरह प्रसिद्ध होने लगी थीं। उनके तेजस रूप की चर्चा स्त्रियों और युवकों में कौतूहल से की-सुनी जाती थी। उनके साधक व्यक्तित्व के प्रति जनमानस में श्रद्धा थी।

नगर-क्षेत्र में पहुंचते ही विस्मित हो उठे थे अर्जुन।

स्वागतद्वार बने हुए थे उनके लिए और स्वागत में स्वयं खड़े थे कलिंग-राज चित्रवाहन।

---

१. हरद्वार से मणिपुर आने तक अर्जुन ने जिन-जिन स्थानों का भ्रमण किया, वे हैं : १. अगस्त्यवट (हिमालय का एक पवित्र स्थान), २. वशिष्ठ पर्वत, ३. भृगुतुंग पर्वत (पंचकेदार में से एक), ४. नैमिषारण्य (एक पुराना तपोवन, जो अनुमान है कि गोमती तट पर था। आधुनिक नीमखार-क्षेत्र, जो अवध क्षेत्र में नीमसार रेलवे स्टेशन के आसपास है।) ५. नन्दा, महानन्दा, कौशिकी, महानदी और गया, गंगा, (सभी नदी तट-क्षेत्र), ६. महेन्द्र पर्वत (उड़ीसा से लेकर मद्रास तक बिखरी पर्वत श्रृंखला)।

अर्जुन रथ से उतरकर जैसे ही उनकी ओर बढ़े, राजा ने आदरपूर्वक कहा था, "कलिंग की भूमि पर महाप्रतापी भीष्म के पौत्र का स्वागत है ! हम सब आनन्दित हुए कुन्तीसुत कि तुम्हारे चरण इस धरती पर पड़े।"

अर्जुन ने उत्तर में राज-सम्मान सहित अभिवादन किया था राजा चित्रवाहन का। स्वागत-नारों और जय-जयकारों के बीच धनंजय अतिथि गृह की ओर चले। राजा चित्रवाहन ने उनके स्वागत, आमोद-प्रमोद और सेवा की उत्तम व्यवस्था की थी। अर्जुन प्रसन्न हुए।

नगर-भ्रमण की व्यवस्था नहीं करवाई गई थी; किन्तु अर्जुन मणिपुर के सौन्दर्य वैभव और कलात्मकता से प्रभावित थें। अकसर नगर-मार्गों पर घूमने निकल जाया करते और इसी तरह घूमते हुए उन्होंने चित्रांगदा को पहली-पहली बार देखा था।

अनिंद्य सुन्दरी ! रूप और लावण्य जैसे साक्षात् हो गया हो।

अर्जुन ने मन में एक खलबलाहट अनुभव की थी। वेशभूषा, आभूषण, गरिमामय व्यक्तित्व और आसपास सेवक-सेविकाओं का झुरमुट…सब प्रमाण थे कि राजकन्या ही है। फिर पता भी लगा लिया था।

नाम है—चित्रांगदा ! कलिंगराज चित्रवाहन की बेटी हैं। राजा की इकलौती संतति।

मन हुआ था कि उसी क्षण चित्रांगदा के पास पहुंचकर प्रेमाभिव्यक्ति करें; किन्तु राजसीमाओं ने जकड़ लिया था। निवास पर आकर व्यग्र, अन्यमनस्क से चित्रांगदा को लेकर ही सोचते रहे थे।

क्या राजा चित्रवाहन से स्पष्ट कह देना उचित होगा कि अर्जुन उनकी बेटी पर आसक्त हुए हैं ?

अथवा चित्रांगदा के मन का ही पहले पता कर लें ?

किन्तु चित्रांगदा तक सीधे बात करने जा पहुंचना आतिथ्य-सीमा का उल्लंघन करना लगा था। यही उचित समझा कि मणिपुर महाराज के सामने उपस्थित होकर साफ-साफ प्रस्ताव कर दें।

जा पहुंचे थे। स्वर में साहस और दृष्टि में विनम्रता बनाये रखकर निवेदन किया था—"राजन् ! मैं कुन्ती और राजा पाण्डु का पुत्र अर्जुन, आपकी कन्या से विवाह करना चाहता हूं।"

सोचा था कि चित्रवाहन पर प्रतिक्रिया देखेंगे; किन्तु लगा कि चित्रवाहन शान्त हैं। विचारमग्न। तुरन्त उत्तर नहीं दिया था उन्होंने।

अर्जुन चकित होकर बोले थे—"आपने कुछ कहा नहीं महाराज !"

चित्रवाहन ने गहरा श्वास लिया। बोले—"मुझे तुम्हारा प्रस्ताव सुनकर हर्ष हुआ है कुन्तीसुत ! किन्तु एक दुविधा है।"

"सो क्या ?"

चित्रवाहन ने बतलाया था "मैंने अपनी पुत्री चित्रांगदा को 'पुत्रिका' के रूप में पाला है। सभी सुविधाएं, शक्तियां, शिक्षा और योग्यता भी पुत्र की तरह ही दिलायी है।"

"कारण ?" अर्जुन ने प्रश्न किया।

राजा चित्रवाहन ने कारण बतला दिया था। उनके बाद मणिपुर को सम्भालने के लिए कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने निश्चित किया था कि राजकुमारी चित्रांगदा से उत्पन्न होने वाले पहले पुत्र को वह ले लेंगे और इस तरह उनका वंश चलता रहेगा।

सब सुन-जानकर अर्जुन ने उत्तर दिया था—"तो इसमें क्या असुविधा है राजन ! चित्रांगदा से उत्पन्न अपने पहले पुत्र को मैं आपकी कन्या के शुल्क रूप में आपको दे दूंगा !"

चित्रवाहन सन्तुष्ट हो गए थे।

चित्रांगदा को पा लिया था अर्जुन ने। मणिपुर-राज ने धूमधाम से विवाह करने के बाद बेटी और दामाद को एकांत निवास सौंप दिया था।

चित्रांगदा ! अनायास ही अर्जुन को लगा है, जैसे कुछ स्पर्श उनके शरीर पर कोमल फूलों की छुअन-जैसे जनम आए हैं। चित्रांगदा के कोमल शरीर की छुअन ! इस छुअन के साथ अर्जुन के बनवास काल के पूरे तीन वर्ष जुड़े हुए हैं या कि अर्जुन ही उस छुअन से जुड़े रहे हैं और बभ्रुवाहन उन तीन बरसों का एक सुखद-दृष्टि-सत्य !

बभ्रुवाहन पुनः स्मरण हो आया था। लगा था, जैसे युद्ध-शिविर की इस एकांतिक दिशा में बभ्रुवाहन आ खड़ा हुआ है। रोमांचित करता हुआ। यह भी याद आया कि गुप्तचर की सूचना के अनुसार संभवतः बभ्रुवाहन से अगली भेंट रण-क्षेत्र में ही होगी।

अर्जुन जानते हैं—रणक्षेत्र में क्या होगा ? एक राजा बभ्रुवाहन का ही क्या, उन सभी का परिणाम और स्थिति जानते हैं, जो अर्जुन से युद्ध में टकराकर विजय-चेष्टा करेंगे।

अर्जुन आश्वस्त हैं—युद्ध के प्रति भी और परिणाम के प्रति भी। क्यों न हों ? भरतखंड की किस सीमा, किस राज में कितनी शक्ति है, अर्जुन पहले से परिचित हैं। उससे भी अधिक परिचित हैं भरत क्षेत्र के राजाओं की शक्ति-सामर्थ्य से।

मन ने सहसा ही कुनमुनाकर कह दिया था, "इसलिए ना कि तुम जानते हो गांडीवधारी ! किस राज और राजा के पास कौन-सी शक्तियां हैं ? कितना सामर्थ्य है, किस सीमा तक आर्थिक और सैनिक शक्ति है ? इसलिए कि तुम केवल योद्धा नहीं, नीतिज्ञ भी हो। तुम्हारे योद्धा रूप और नीतिज्ञता को कृष्ण के कर्मवाद ने सामर्थ्य की सर्वोत्तम ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया है। उस बार, जब तुम महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदी को एकांत में देखकर तथाकथित प्रायश्चित करने निकले थे, तब प्रायश्चित से अधिक भारत-विजय की तुम्हारी इच्छा ही थी।"

"किन्तु···किन्तु मैं सच ही प्रायश्चित करने निकला था।" व्यग्र-भाव से उनके अपने भीतर बैठा सरल मन अर्जुन तर्क करने लगता है। "निःसन्देह मैं प्रायश्चित स्वरूप ही भारत-यात्रा पर निकला था।"

"निःसन्देह ! इसको तो मैं अस्वीकार नहीं रहा हूं अर्जुन ! मैं केवल उस उद्देश्य को स्वीकार करवाना चाहता हूं, जिसको तुमने इस प्रायश्चित्त में समो दिया ?" मन पुनः तर्क करता है।

और लगता है कि अर्जुन सहसा अपने से ही निरुत्तर हो उठे हैं। सच तो है, जब प्रायश्चित की पीड़ा मन में संजोए हुए अर्जुन जहां-तहां भटकने लगे थे, तभी सहसा उनकी राजबुद्धि ने एक करवट लेकर सोचना प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रायश्चित को भी एक योग्य उद्देश्य क्यों न दे दिया जाए ?

यह उद्देश्य था, जिस-जिस नगर-क्षेत्र से गुजरना, उस-उस नगर-क्षेत्र राज्य की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सैनिक सामर्थ्य-शक्ति का जायजा लेते चलना और इसी सन्दर्भ में एक सिन्धु देश ही क्यों, अर्जुन

सीमावर्ती सभी राज्यों की भौगोलिक, सैनिक शक्तियों को जांचते-परखते

गए थे। वहां के रीति-रिवाज, मौसम, व्यवहार पद्धति, मान्यताएं, समाज-नियम और राजा की शक्ति तथा जनप्रियता...यह सब अर्जुन ने उसी समय आंका था। इस अंकन को पहले रोचकता से ग्रहण किया, फिर इस रोचकता को अर्थ दे दिए। पूरी तरह राजनैतिक अर्थ ! यदि कभी पांडवों से इस क्षेत्र और राज्य की टकराहट हो जाए, तब अर्जुन का यह ज्ञान बहुत काम आएगा।

राजा चित्रवाहन के साथ रहकर, उनसे परिवार सम्बन्ध जोड़ते हुए भी अर्जुन बड़ी सावधानी और सतर्कता से उनके राज्य कलिंग का हर तरह का जायजा लेते गए थे। यह जायजा और जानकारियां अब काम आएंगी। अर्जुन ने विचार किया था।

बभ्रुवाहन, उलूपी और चित्रांगदा सहसा ही अर्जुन के सैनिक-मन से अलोप हो गए—स्मरण में रह गया केवल युद्ध ! और युद्ध के पूर्व की व्यूह रचना ! तुरत ही सेनानायकों को बुलवा भेजा था। उन्हें जानकारी देंगे कि इस राज्य की सम्भावित सैन्य-शक्ति कितनी हो सकती है और उससे भी आगे भौगोलिक रचना क्या है ? जिस क्षण कलिंगराज बभ्रुवाहन युद्ध के लिए आएंगे, उस समय यही व्यूह रचना पांडव-सेना के काम आएगी।

कुछ समय बाद ही सेनानायक उपस्थित हो गए थे !

जिस बभ्रुवाहन को सहज समझते थे, वही असहज साबित हुआ। अर्जुन ने रणक्षेत्र में उतरते ही समझ लिया था कि बभ्रुवाहन से सामना करना, किसी कर्ण या द्रोण से सामना करने की तुलना में कम नहीं है। तिस पर बभ्रुवाहन युवा। उसकी शारीरिक क्षमता, चपलता भी अर्जुन से कई गुना ज्यादा थी। बाण संधान के लिए उसके हाथ विद्युत गति से कार्य करते और उतनी ही तीव्रता से बाण बरसते।

पुत्र के पराक्रम से बहुत हर्षित हुए थे अर्जुन; पर चिन्तित भी। कहीं अश्वमेधयज्ञ का घोड़ा हार न जाए ! एकाग्रता के साथ बभ्रुवाहन के आतंककारी हमलों का सामना करने लगे थे।

किन्तु बहुत देर नहीं चल सका था यह युद्ध। कारण था अर्जुन की ओर से ममत्ववश निरन्तर बभ्रुवाहन का बचाव करते हुए अस्त्रों का प्रयोग और बभ्रुवाहन की ओर से लगातार खतरनाक अस्त्रों का उपयोग। अर्जुन एक तीखे प्रहार के कारण बेसुध हो गए थे।

पांडव सेना में हाहाकार मच गया। बहुतेरे योद्धा और सैनिक अर्जुन के धराशायी होते ही मैदान छोड़ने लगे। अनेक भागते-बचते मारे गए। इस सारे दौर में बभ्रुवाहन भी कम घायल नहीं हुआ था। वह भी अपने पक्ष में बेहोश हो चुका था।

सांझ ढल आई थी और इस ढलाव के साथ ही युद्ध के नियमानुसार दोनों पक्षों ने युद्ध बन्द कर दिया था। अपने-अपने बेसुध राजाओं को उठाकर शिविरों में ले गए थे।

मणिपुर के राजभवन में विद्युत-गति से समाचार फैल गया था।

"महाराज बभ्रुवाहन ने गांडीवधारी को मरणासन्न स्थिति तक पहुंचा दिया है।"[1] प्रजाजन उल्लसित थे। बभ्रुवाहन की मूर्च्छा टूट चुकी थी; किन्तु राजमाता चित्रांगदा व्याकुल हो गई थीं। राज्यों के सार्वभौमिक अधिकार और स्वतन्त्रता की इच्छा से अधिक भावना ने काम किया था। चित्रांगदा व्याकुल होकर अर्जुन के प्रति चिन्तित हो गईं। विशेष अनुचर बुलवाकर आदेश दिया था, "पांडु पुत्र अर्जुन के सैन्य-शिविर तक जाओ और समाचार लेकर लौटो कि उनकी हालत कैसी है?"

अनुचर तुरंत दौड़ा गया था। इधर बभ्रुवाहन भी कम बेचैन नहीं

१. अर्जुन और बभ्रुवाहन के संग्राम का वर्णन करते हुए महाभारत के अध्याय ७९ (अश्वमेध पर्व) में कहा गया है कि 'मर्मस्थल में बाण लगने के कारण अर्जुन मूर्छित होकर गिर पड़े (श्लोक-क्रम ३८ और ३९) जबकि ८०वें अध्याय में चित्रांगदा ने अर्जुन को मृत कहा है। संभवतः चित्रांगदा मूर्छित अर्जुन को मृत समझ बैठी थीं। उलूपी ने उन्हें संजीवनी मणि के उपचार से जीवित किया। यह 'जीवित करना' संभवतः मूर्छा से चेत आने के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है।

—लेखक,

था। युद्ध में उसने अनुभव किया था कि महावीर अर्जुन लगातार उसके अस्त्रों को काटते रहे थे। ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया था कि बभ्रुवाहन को देहिक क्षति पहुंचे। इसके विपरीत बभ्रुवाहन ने चपलता के साथ पिता पर कुछ घातक प्रहार कर डाले थे। ऐसे प्रहार, जिनके कारण उनकी मृत्यु भी हो सकती थी। इसी प्रयत्न में नाराच बाण चला बैठा था वह।

अर्जुन ने उसे भी काटा था; किन्तु अगले प्रहार का सामना करने की चपलता नहीं दिखा सके। परिणाम में एक बाण मर्मस्थल पर जा लगा था। अगले ही क्षण मुकुट धरती पर गिरा और पांडुपुत्र बेसुध हो गए।

माता के सामने लज्जित भाव से शीश झुकाए जा खड़ा हुआ था बभ्रुवाहन। कांपते शब्दों में कहा था, "यह दोष मुझसे हुआ माता! मैं अपरोक्ष रूप से पितृहन्ता बनने जा रहा हूं।"

व्यथित चित्रांगदा दुत्कारने लगी थीं उसे। कहा था, "तू मूर्ख है बभ्रुवाहन! बाण-संधान करते समय यह कैसे भूल गया कि महाराज अर्जुन तेरे पिता हैं! उन्हीं का वीर्यांश है तू! तेरे बल, क्षमता, पराक्रम सबसे उनका अपना वीरतापूर्ण रक्त जुड़ा हुआ है। धिक्कार है तुझ पर!"

बभ्रुवाहन लज्जा से भरा हुआ उसी तरह सिर झुकाए खड़ा रहा। अपराध बोध से ग्रस्त।

चित्रांगदा की आंखों से आंसू झरते रहे थे। बभ्रुवाहन के शरीर पर अनेक घाव थे उन घावों में जहां-तहां पट्टियां बंधी थीं; किन्तु चित्रांगदा ने उस ओर देखा तक न था। खोज-खबर लेना तो दरकिनार, उन्हें केवल अपने आगत वैधव्य की पीड़ा सता रही थी। सिसकते हुए कहा था, "पति के रहते पुत्र तो मिल सकता है मणिपुरराज! किन्तु पुत्र के रहते पति खो दिया जाए, तो स्त्री उसे कहां पा सकती है? तुझसे केवल पितृघात का पाप ही नहीं हुआ है, अपितु तूने मातृहत्या भी कर डाली है।" सिसकियां निराशा में बदलने लगी थीं। लगता था कि हौले-हौले होश गुम रहा है। अर्जुन पर हुए आघात से कहीं अधिक आघात अर्जुन की मूर्च्छा का समाचार सुनकर लगा था। जैसे-तैसे मनःशक्ति से स्वयं को सम्हाले रही थीं चित्रांगदा। केवल उस अनुचर की राह देख रही थीं, जो अर्जुन के कुशल-

समाचार हेतु पांडव-शिविर की ओर गया था।

सेवक समाचार लेकर लौटा। कुछ कह सके, इसके पहले ही उसके चेहरे और चाल ने बतला दिया था कि शुभ समाचार नहीं है। बभ्रुवाहन जबड़े कसे हुए चुप खड़ा था। चित्रांगदा ने प्रश्नातुर दृष्टि सेवक की ओर उठाई, तो सेवक ने सिर झुकाकर कहा था, "पांडवराज अर्जुन अभी तक मूर्च्छित हैं राजमाता ! चिकित्सक भांति-भांति की औषधियों का उपयोग करके उन्हें सुधि में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं; किंतु उनकी मूर्च्छा गहन होती जा रही है।"

"ओह् !" एक कराह की तरह शब्द निकले थे चित्रांगदा के होंठों से, फिर पलकें झुकती चली गई थीं।

राजमहल में दौड़-भाग मच गयी। पानी के छींटे राजमाता के मुख पर डालकर उन्हें जैसे-तैसे सहेजा गया, फिर वह तरह-तरह से विलाप करने लगी थीं। राजा बभ्रुवाहन घबरा गए थे। माता के करुण विलाप ने जितना नहीं डराया था, इस अहसास ने डरा दिया था कि अजाने ही वे पितृहत्या के दोषी हो गए हैं। किस तरह प्रायश्चित कर सकेंगे इस पाप का ?

चित्रांगदा ने इच्छा व्यक्त की, "मुझे तुरन्त पांडव शिविर में ले चलो मणिपुर राज ! मैं धनंजय के दर्शन करना चाहती हूं।"

राजा बभ्रुवाहन ने तुरंत व्यवस्था की। स्वयं भी साथ चल पड़े। उन्होंने भी निश्चय कर लिया था यदि प्राण देकर भी इस अपराध का प्रायश्चित कर सकेंगे, तो करेंगे !

मन ने तर्क भी किया था, "युद्ध में किसी एक पक्ष का मारा जाना तो निश्चित ही होता है बभ्रुवाहन ! फिर सामना करने वाला योद्धा परिचित हो या सम्बन्धी ? राजा अर्जुन को तुमने युद्ध में आहत किया, यह पाप नहीं हुआ !"

पर बभ्रुवाहन के मन ने इस तर्क को घोंट लिया था। कैसे न घोंट लेते ? याद था कि अर्जुन पर घातक प्रहार उन्होंने किए थे। अर्जुन ने युद्ध करते हुए भी किसी बार उन पर ऐसा कोई बाण संधान नहीं किया था, जो बभ्रुवाहन को शरीर क्षति पहुंचाए। सम्भवतः उन्होंने प्रति क्षण यह

स्मरण रखा था कि बभ्रुवाहन उनके पुत्र हैं।

इसके विपरीत किया था बभ्रुवाहन ने। अतः पितृघात हुआ।

•

चित्रांगदा और दुःखी बभ्रुवाहन अर्जुन के युद्ध-शिविर में गए हैं। समाचार नागपुत्री उलूपी तक पहुंचा था। उससे पहले यह समाचार भी मिल गया था कि बभ्रुवाहन से युद्ध करते हुए अर्जुन मूच्छित हो गए हैं।

मन में कहीं टीस उठी थी। अर्जुन के स्पर्श उलूपी के तन-मन में बसे हैं। उनके साथ सहवास और सम्मोहन से भरे क्षण उलूपी की यौवन-स्मृतियां! वही पांडव-पुत्र अर्जुन अब बेसुध हैं।

समाचार पाकर उतावली में उठ पड़ी थीं। आकुल होकर तुरंत अर्जुन के पास पहुंच जाना चाहती थीं; किंतु मन में ही कहीं कोई चुभन ऐसी भी थी, जिसने ऐसा करने से टोक दिया था, "नहीं नागपुत्री! अर्जुन को यही दंड मिलना चाहिए। पांडुपुत्र ने अपनी वीरता, सौम्यता, यश और पराक्रम को माध्यम बनाकर कितनी ही स्त्रियों से विवाह कर लिया, फिर उन्हें छोड़कर चलते बने। ऐसे स्वार्थी पुरुष को यही दंड मिलना चाहिए। वह इसी योग्य हैं!"

उलूपी थम गई थीं; पर असहज बनी रहीं। अनुचर से प्रतिपल सूचना प्राप्त करती रही थीं? अब कैसे हैं पांडुपुत्र? अब? अब?

और हर बार समाचार पीड़ा को अधिक गहराता गया था, "मूर्च्छा गहन होती जा रही है देवी! अर्जुन के शरीर से रक्तस्राव भी बहुत हुआ है। यदि यही दशा रही तो…।"

"न-न, सेवक! आगे मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहती।" उलूपी ने व्यग्र होकर कहा था, "अब…अब तुम जा सकते हो!"

सेवक चला गया था। उलूपी अकुलाए मन से राजभवन के अपने निवास में चहलकदमी करती रहीं। मन रह-रहकर कुरेद रहा था—चलो उलूपी! अर्जुन तक पहुंचो! उन्हें देखो! कहीं ऐसा न हो कि सहज नारी स्वभाव की कुढ़न के वश होकर तुम अन्याय कर बैठो। अर्जुन मूर्च्छावस्था में ही प्राण छोड़ बैठें?"

उलूपी के भीतर लहरें अनायास ही तूफान बनने लगीं थीं। निरंतर तीव्र और तीव्रतर होती हुईं। इसके बावजूद यह विचार मन से अलग नहीं कर पा रही थीं कि अर्जुन ने अनेक स्त्रियों से विवाह किया है।

"पर एक पुरुष का अनेक स्त्रियों से विवाह कर लेना कभी समाज-दोष तो नहीं माना गया उलूपी !" मन ने प्रश्न किया था, "आर्य समाज व्यवस्था में यह दोष नहीं है ? न ऐसी कोई व्यवस्था ही समाज-शास्त्रियों ने दे रखी है ?"

"किंतु मेरी दृष्टि में यह दोष भर नहीं, अपराध है।" उलूपी अपने से ही तर्क कर उठी थीं।

किंतु इस तर्क के बावजूद अर्जुन के प्रति आकर्षण और दोषी भाव में कमी नहीं आई। रह-रहकर मन में मोह गहराने लगा था···अर्जुन मूच्छित हैं। मूर्च्छा गहरी होती जा रही है। चित्रांगदा और बभ्रुवाहन तो सैनिक शिविर तक पहुंच चुके हैं। कहीं ऐसा न हो कि उलूपी अर्जुन के दर्शनों से भी वंचित रह जाए ? मन में जनमी आशंका ने डरा ही नहीं दिया था उन्हें—थरथरा डाला था। स्वयं को रोक नहीं सकी थीं। तुरंत पांडव-सेना के शिविर की ओर प्रस्थान कर दिया था।

पांडव-सेना में गहरी निराशा थी। उससे अधिक अविश्वास और अचरज-भरी फुसफुसाहटें बिखरी हुई थीं, "गांडीवधारी को कोई युद्ध में हत कर सकता है, यह तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिनके बाणों ने अविजित भीष्म को दहला दिया, जिनके प्रहारों से कर्ण भी नहीं बच सके, ऐसे प्रतापी अर्जुन को मणिपुर का वह छोटा-सा राजा हत कर सकता है ?"

अविश्वसनीय !

अकल्पित ! -

जिस क्षण उलूपी ने अर्जुन के शिविर में प्रवेश किया, उस समय सभी ओर गहरा सन्नाटा और आशंका से भरी उदासी बिखरी हुई थी। चित्रांगदा निःशब्द घायल और मूच्छित पड़े अर्जुन के पैरों पर सिर दिये

सिसक रही थीं। बभ्रुवाहन अमावसी चेहरा लिए, सिर झुकाए शिविर में एक ओर खड़े हुए थे। चिकित्सक निराश भाव से अर्जुन का चेहरा देखते हुए।

उलूपी सब कुछ बिसराकर घायल अर्जुन को देखकर सिसक पड़ी थीं।

अर्जुन के घायल चेहरे पर मृत्यु चिह्न गहराते दीख रहे थे। उलूपी को स्मरण आया था वह दिव्य, दमदमाता शरीर, जिसे अर्जुन रूप में पहली बार उन्होंने पाया था। उन्हीं अर्जुन को लेकर कितनी कठोर हो गई थीं वह? लगा था कि मन बर्फ की तरह पिघलने लगा है। अपने ही बदन को कांपता-थरथराता हुआ महसूस किया।

कुछ कहें, इसके पूर्व ही चित्रांगदा उन्हें समीप पाकर बिखर पड़ी थीं। कहा था—"नागपुत्री! देख रही हो अपने प्रिय की दशा? यह मेरे ही नहीं तुम्हारे भी स्वामी हैं उलूपी! इनके प्रति कठोर होकर तुमने बभ्रुवाहन को ऐसी सीख क्यों दी कि वह इनसे युद्धरत हो! बहन! अनजाने ही सही; किन्तु राजधर्म निबाहते-निबाहते हम पतिघातिनी भी सिद्ध हो गई हैं। महावीर धनंजय मृतवत पड़े हैं! कितने क्षण यह जीवित रह सकेंगे या जीवनशक्ति इनमें शेष रही है या नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता!"

उलूपी ने शान्त होकर सब कुछ सुना। चित्रांगदा जो कुछ कह रही थीं, वह सरल स्त्री मन की सहज अभिव्यक्ति थी। उलूपी ने स्वयं भी यही कुछ अनुभव किया था। अर्जुन की दशा ने उन्हें भी कम नहीं सहमा दिया था।

उलूपी के चेहरे पर बिखरे तनाव और दुःख को देखते-जानते हुए भी चित्रांगदा किसी भी क्षण यह नहीं भूल पा रही थीं कि अर्जुन की इस मरणावस्था की दोषी उलूपी हैं। वही तो थीं, जिन्होंने राजा बभ्रुवाहन को निरंतर उकसाया था कि वह अर्जुन से युद्ध करें और परिणाम…?

आहत होकर चित्रांगदा लगभग धिक्कारने लगी थीं उलूपी को—"देवी! पांडुपुत्र अर्जुन ने बहुत-सी स्त्रियों से विवाह कर लिया, क्या

इसी को दोष मानकर तुमने इन्हें हत करवा डाला है ?[1] किन्तु स्मरण रखना नागपुत्री ! तुम इस दोष से कभी मुक्त नहीं हो सकोगी। तुम स्वयं अपनी ही नहीं, समस्त स्त्री जाति की दोषी बनने जा रही हो।"

सहसा उलूपी ने रोक दिया था चित्रांगदा को, "शान्त हो सखी ! राजा अर्जुन ने अपने ही पुत्र से पराजय पाकर अपने किसी दोष का प्रायश्चित्त किया है; पर आश्वस्त हो उनके प्राण नहीं जाएंगे और न ही तुम्हें तथा तुम्हारे पुत्र को प्रायोपवेशन करके प्राण त्यागने होंगे।" बात पूरी करते ही उलूपी ने संजीवनी मणि नामक दिव्य औषध अपने पास से निकालकर अर्जुन का उपचार आरंभ किया था। इस विशेष औषध ने गांडीवधारी की मूर्च्छा हरण कर ली। अधिक रक्त बह जाने के कारण अत्यधिक कमजोर हो चुके अर्जुन ने पलकें खोलकर चारों ओर देखा था।

उनके समीप चित्रांगदा ही नहीं उलूपी और बभ्रुवाहन भी खड़े थे। सबकी आखें भीगी हुई थीं; किन्तु अर्जुन को जीवित पाकर प्रसन्नता से चेहरा दमक रहा था।

बभ्रुवाहन ने सिर झुकाकर कहा था, "मुझे क्षमा करें पितृ ! यह दोष मुझसे हुआ था। मैं ही आपकी इस दशा का कारण बना हूं।"

अर्जुन ने जैसे-तैसे उत्तर दिया। बोले, "तुमने वीरोचित कर्म किया है पुत्र ! युद्ध में सम्बन्ध और रक्त विचार नहीं किया जाना चाहिए। शर्त यही है कि युद्ध का अवलम्बन न्याय के लिए हो ! मैं तुमसे तनिक भी रुष्ट नहीं हूं।"

उस रात्रि चित्रांगदा, उलूपी और मणिपुर नरेश बभ्रुवाहन अर्जुन के शिविर में ही रहे थे। शक्ति-वर्धक औषधियों के प्रभाव से शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ होने लगा था उन्हें, पर जैसे-जैसे शरीर-मन स्वस्थ हो रहा

---

१. अर्जुन द्वारा बहुत-सी स्त्रियों से विवाह कर लेने के कारण उलूपी द्वारा उनसे ऐसा वर्ताव करने की बात चित्रांगदा ने अश्वमेध पर्व के श्लोक-क्रम १० से २० के बीच (अध्याय ८०) में कही है।

था, वैसे-वैसे अर्जुन को लग रहा था कि मन ग्लानि से भरने लगा है। विश्वजयी योद्धा के रूप में यश प्राप्त करने वाले अर्जुन, अपने ही पुत्र बभ्रुवाहन से युद्ध में परास्त हो गए ? विश्वास करने को मन न होता; पर सत्य सामने था !

मन कहीं अपने ही भीतर शरीर से अधिक आहत हो गया था··· कैसे ? किस दोष के कारण ऐसा हुआ ? याद आने लगे थे कृष्ण। वह होते तब इस रहस्य का उद्घाटन अवश्य ही करते ! लगा था कि गहरे अधूरे-पन से भर उठे हैं अर्जुन।

जय प्राप्त करके भी बभ्रुवाहन ने पिता अर्जुन की अधीनता स्वीकार की थी। कहा था, "आप आश्वस्त हों पूज्य ! मैं चैत्र की पूर्णमासी को हस्तिनापुर पहुंचकर महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेधयज्ञ में सम्मिलित होऊंगा। यही नहीं, आपके पुत्र की तरह सेवा में भी सहयोग करूंगा।"

अर्जुन सन्तुष्ट हुए; किन्तु मन की पीड़ा से नहीं उबर सके। कहा तो नहीं था कुछ; पर अपने भीतर ही घुटते रह गये थे। रक्तसम्बन्ध ने मणि-पुर नरेश को आधीन किया था; किन्तु युद्ध में अर्जुन जय नहीं पा सके। लगा था कि अपने ही भीतर अधूरे हो उठे हैं।

उलूपी ने उनके मन की दशा समझी थी। विदा पूर्व पूछ लिया था, "देखती हूं पांडुपुत्र ! आप किसी दुश्चिन्ता से ग्रस्त हैं।"

अर्जुन ने गहरा सांस लेकर उत्तर दिया था, "हां, नागपुत्री ! मैं केवल चिन्तित नहीं, आत्मपीड़ित हुआ हूं। यह कैसे संभव हुआ कि बभ्रुवाहन ने मुझे युद्ध में परास्त किया ? इस विचार से मैं गहरी पीड़ा अनुभव कर रहा हूं कि मेरा वीरतत्व कहीं-न-कहीं खंडित हुआ है।"

उलूपी हंसी ! बहुत धीमी हंसी। कहा, "बभ्रुवाहन से परास्त होने पर आप तनिक भी क्लेष अनुभव न कीजिए, धनुर्धर ! आप में और बभ्रुवाहन में अन्तर नहीं है। आप अजेय हैं; किन्तु बभ्रुवाहन द्वारा परास्त होना आपके अपने आत्म द्वारा आपका परास्त होना है। अतः यह पराजय नहीं ! पुत्र आत्मस्वरूप होता है, अतः उसका कोई भी कृत्य आप से अलग नहीं है।"

अर्जुन चकित हुए। उलूपी, केवल सुन्दरी नहीं उतनी ज्ञानमयी भी

होगी, यह कल्पनातीत था उनके लिए।

उलूपी ने कहा था, "और आपका पराजित होना भी आवश्यक था आर्यपुत्र ! इस पराजय से आप दोषमुक्त हुए हैं। एक सीमा तक यह पराजय आपको पापमुक्त कर गई है !

"सो, किस तरह उलूपी !" अर्जुन ने प्रश्न किया था। जितने चकित थे, उतने ही इस विचार से सहमे हुए कि वह अपनी वीरता के श्रेष्ठत्व के के साथ-साथ अजाने ही कोई पाप कलंक भी ढो रहे हैं।

उलूपी ने उत्तर दिया था, "राजन् ! कुरुक्षेत्र युद्ध में आपने अधर्मपूर्वक प्रतापी भीष्म का वध किया था, सामान्य स्तर पर भले ही उसे आपका पराक्रम समझ लिया गया हो; किन्तु सत्य यह है कि आप युद्ध में अधर्म के दोषी तो हुए ही थे ! जिस तरह भीष्म के आत्मज होते हुए भी आपने भीष्म को हत किया, ठीक उसी तरह बभ्रुवाहन ने आपका आत्मज होते हुए भी आपको लगभग हत कर डाला ! इस तरह आप अपने पूर्वज भीष्म के प्रति हुए पाप से दोषमुक्त हो गए !"

अर्जुन निरुत्तर हो गये थे।

उलूपी विदा हो, इससे पूर्व ही बभ्रुवाहन आ पहुंचा था। प्रणाम कर निवेदन किया था कि अर्जुन मणिपुर के राजमहल में चलकर कुछ समय व्यतीत करें।

पुत्र को स्नेहाशीश देकर धनंजय ने कहा था, "मैं तुम सबके स्नेह से प्रसन्न हूं, पुत्र ! किन्तु इस समय अपने कर्त्तव्य-बन्धन में बंधा हुआ हूं। यज्ञ का यह सन्देशदूत अश्व जिस-जिस ओर जाता है, उस-उस ओर जाना ही मेरा इस समय का धर्म है। अतः मेरे लिए तुम्हारा स्नेहामंत्रण स्वीकारना संभव नहीं। अब मैं अपनी विजय-यात्रा पर चलूंगा !"

उलूपी, चित्रांगदा और बभ्रुवाहन ने अर्जुन को ससम्मान मणिपुर राज्य की सीमा से विदाई दी थी।

जीवन के किस कर्मक्षेत्र में किया गया कौन-सा कार्य पुण्य हो जाता है और कौन-सा पाप—इसका निर्धारण बहुत कठिन है। मणिपुर से विदा होते समय यही कुछ सोचा था अर्जुन ने।

नागपुत्री उलूपी द्वारा भीष्म वध को पाप कहे जाने और उसके प्रायश्चित स्वरूप अपने ही आत्मस्वरूप से पराजय पाने को दोषमुक्ति बतलाये जाने की बात ने अर्जुन को बहुत मथा। इतना कि सागर तट पर लहरों के सिर धुनने की तरह अपने ही भीतर छटपटाते रहे थे। पाप और पुण्य का निर्धारण कैसे कर सकता है मनुष्य ?

हर लहर की बिलखन और मन के तट से पछाड़ खाने की ध्वनि के साथ-साथ श्रीकृष्ण स्मरण में बिजली की तरह कौंध-कौंध उठते। श्रीकृष्ण से विलग होकर जैसे बहुत अधूरे हो जाते हैं अर्जुन !

मन अनेक बार टोकता था, "आत्मनिर्भर बनो धनंजय ! अपने आप में सम्पूर्ण हो तुम ! पल-पल प्रति विचार पर तुम स्वयं को ऐसे अधूरा क्यों अनुभव करते हो ?"

अर्जुन मन के इस कथन से सहमत होने की चेष्टा करते हैं। सदा करते आये हैं। अपने ही भीतर मनुष्य का सम्पूर्ण ढूंढने का प्रयत्न करते हैं—आखिर क्या कमी है उनमें ?

अर्जुन वीर हैं, सौम्य हैं, साहसी हैं, आकर्षक हैं, शरीर सामर्थ्य में भी पूर्ण हैं, योद्धा हैं, विनम्र हैं, स्वाभिमानी हैं, चरित्रवान हैं, विवेकशील हैं, संस्कारित हैं, तब क्या शेष रह गया है उनके सम्पूर्ण पुरुष होने में ? मन को आश्वस्त कर लेना चाहते हैं, "नहीं ! कुछ भी तो शेष नहीं, सम्पूर्ण !"

पर लगता है कहीं-न-कहीं कुछ-न-कुछ ऐसा छूटा हुआ है, जो निरंतर अहसास करवाता रहता है कि अर्जुन पूरे दीखते हुए भी अधूरे हैं !

कहां है वह अधूरापन ? और क्या है ?

कभी नहीं खोज पाये; पर लगातार अनुभव किया था कि उनके अपने भीतर कहीं कुछ अधूरापन अवश्य है !

उस अधूरेपन को सदा ही खोजने का प्रयत्न करते रहे हैं धनंजय।··· है, पर पहचान नहीं आता। उसे पहचानना चाहते हैं। वह कौन-सी चीज है, जो उन्हें सहसा नारायण से नर बना देती है। सम्पूर्ण तब होते हैं, जब

श्रीकृष्ण साथ हों !

भरत-खण्ड की समुद्र सीमाओं पर महान् महाराजा युधिष्ठिर की विजय दुन्दुभी लेकर दौड़ता हुआ वह चुनौती भरा अश्व अनेक छुटपुट राज़ाओं राज्यों को पार करता जा रहा है। अर्जुन की वीरता को या तो सबने सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया है अथवा युद्ध की एक औपचारिकता सी निबाहकर पराजय रूप में प्राप्त कर लिया है। जय और जय का इतिहास भरत खंड की हर सीमा रेखा पर अंकित करते जाते अर्जुन को तो प्रसन्न होना चाहिए ! आश्वस्त और निश्चिन्त भी; किन्तु वैसा हो नहीं पाता है। संभवतः उस अधूरेपन को खोज न पाने के कारण ! कितनी ही बार मन कहता है—संभवतः वहम है अर्जुन का। ऐसा कुछ भी अधूरापन है ही नहीं।

पर वह भी मन है, जो मानने को तैयार नहीं होता। तुरंत ही अपने को काटने लगता है— नहीं ! सच यह नहीं है। सच केवल यह है कि अधूरे हैं अर्जुन ! सब तरह सम्पूर्ण होते हुए भी किसी एक कारण से अपूर्ण !

कृष्ण होते तो पूछ लेते उनसे, "वह क्या है वासुदेव! जिसने मुझे पुरुष होते हुए भी सम्पूर्ण पुरुष नहीं होने दिया है ?"

अनायास अर्जुन अपने ही भीतर दुःखी हो जाते हैं। खालीपन से भरे हुए। केवल खाली ! श्रीकृष्ण के बिना कितने अधूरे हैं वह ? विचारकर पीड़ा से भर उठते हैं।

जिस क्षण द्वंद-ग्रस्त थे, उस क्षण मगधराज मेघसन्धि से युद्ध कर चुके थे। मगध के बालक राजा को आधीन करके शिविर में विश्राम कर रहे थे कि द्वंद्व ने घेर लिया था।

अपने ही शब्दों से उलझ गये थे वह। अपने ही सोच में— अभी-अभी यही कुछ सोचा था उन्होंने, "श्रीकृष्ण के बिना कितने अधूरे है वह ?"

कहीं यही तो वह अधूरापन नहीं है, जिसे प्रतिक्षण अपनी पूर्णता में अपूर्णता की तरह झेला है अर्जुन ने ?

निःसंदेह यही। यही उनका अपूर्णत्व। यही उनकी कमी। इस अपूर्णता का अनुभव करते ही बहुतेरी वे घटनाएं याद आने लगी है, जब श्री कृष्ण के साथ रहकर उन्होंने पूर्णता प्राप्त की। कैसी-कैसी घटनाएं, जीवन के कितने महत्वपूर्ण क्षण! कितने ही अवसर! लगता है, उन अवसरों पर यदि श्री कृष्ण साथ न हुए होते, तो अर्जुन पराजित हो गए होते। कोई और हराता, उसके पूर्व स्वयं से ही हार गये होते।

सहसा पुनः बभ्रुवाहन से हुआ युद्ध स्मरण हो आया है। क्या श्रीकृष्ण के साथ रहते, उस तरह अर्जुन युद्ध करते जिस तरह युद्ध किया था? हर बांण-संधान के समय अर्जुन ने स्मरण रखा था कि पुत्र सामने हैं। मोहवश योद्धा-धर्म भी नहीं निबाह सके थे। ठीक वहीं मनःस्थिति हो गई थी, जो कौरव-पांडव सेनाओं के युद्ध-पूर्व अर्जुन के मन में उभरी थी··· घोर मोहग्रस्तता।

और उसी मोहभाव से ग्रस्त होकर बभ्रुवाहन से युद्ध किया था अर्जुन ने। परिणाम में मृत्युमुख पर जा पहुंचे। उलूपी ने उपचार न किया होता तो अर्जुन समाप्त हो चुके थे।

संभवतः यह। मोह उनके पुरुष को पूर्ण नहीं होने देता। मोह था श्रीकृष्ण से विलग होकर उनका निर्णय-शेप हो जाना? संभवतः जीवन की हर जटिलता, सुविधा, संधि के लिए श्रीकृष्ण से सलाह लेते-लेते अर्जुन एक ऐसी स्थिति तक जा पहुंचे हैं, जब स्वयं निर्णय कर पाने की उनकी अपनी क्षमता और निर्णायक शक्ति लोप हो गई है। यही उनका अधूरापन।

याद करते हैं -- कितने-कितने अवसरों पर, जिस-जिस तरह निर्णयाश्रित होते रहे हैं श्रीकृष्ण पर?

लगता है, जीवन-कर्म का कोई भी ऐसा अवसर या घटना नहीं है अर्जुन के पास, जब श्रीकृष्ण से सुने, जाने, पूछे या उन्हें देखे बिना कोई निर्णय ले पाये हों! अपने पर ही चकित हो उठते हैं ---आश्चर्य। हर तरह समर्थ होकर भी कितने असमर्थ सिद्ध हुए अर्जुन?

मन पीड़ा से भर उठता है। कोई तो ऐसा समय या घटना होती जब अर्जुन ने स्वयं होकर कोई निर्णय लिया होता ? कोई घटना याद नहीं आती। बहुत चाहते हैं कि ऐसी किसी घटना को याद करके मन की इस पीड़ा को थाम लें, अपने से ही कह सकें, नहीं। असत्य कहते हो तुम ! बहुत कुछ ऐसा भी है मेरे जीवन में, जब मैंने स्वयं निर्णय लिया है।"

पर कोई घटना नहीं।

संभवत: है ही नहीं—फिर स्मरण कैसे आएगी ?

युद्ध का अवसर रहा हो या राजनीतिक उत्तर, हर पल, हर घटना और समय के साथ श्रीकृष्ण जुड़े हुए हैं। अर्जुन से पहले आ जुड़े हैं। यहां तक कि उनका आनन्द और सुख भी श्रीकृष्ण का आश्रित बनकर प्रारंभ हुआ है।

द्रौपदी को युधिष्ठिर के साथ एकांत में देख लेने पर प्रायश्चित करने चले, तब यहां-वहां घूमते हुए ही प्रभासतीर्थ जा पहुंचे थे।

प्रभासतीर्थ—द्वारकाधीश श्रीकृष्ण का राज्यक्षेत्र।[1]

अर्जुन से पहले अर्जुन की कीर्ति पहुंच जाया करती थी नगर-क्षेत्रों में। भरत-खंड के सर्वाधिक प्रतापी राजकुल के राजकुमार ही नहीं थे वह, अपितु समय के श्रेष्ठ वीरों में गणना होने लगी थी उनकी। तिस पर भीष्म के वंशज थे अर्जुन, और भीष्म व्यक्ति से अधिक अपने ही जीवन में यश की वह सुगन्ध बन चुके थे, जिससे संस्कृति के पृष्ठ आलोकित और सुवासित होते हैं।

प्रभासतीर्थ क्षेत्र में पहुंचते ही दूर द्वारका के नगर-क्षेत्रों में समाचार फैल गया था अर्जुन के आने का। इसी क्षेत्र स्थित रैवतक पर्वत[2] की ओर

---

१. प्रभासतीर्थ : काठियावाड़ में भूतपूर्व जूनागढ़ राज्य के अन्तर्गत, वर्तमान सोम-नाथ मन्दिर क्षेत्र।

२. रैवतक पर्वत : काठियावाड़ की ही भूतपूर्व रियासत जूनागढ़ में स्थित गिरनार नामक पर्वत।

बढ़ रहे थे वह।

वह क्षण अर्जुन के लिए अत्यधिक चकित कर देने वाला था, जब उन्होंने प्रभासक्षेत्र में सहसा द्वारकापति श्रीकृष्ण द्वारा स्वागत का समाचार सुना, फिर किसी ब्राह्मण ने यह भी बतलाया था उन्हें, "यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण तुम्हारे ही स्वागतार्थ आ रहे हैं पांडुपुत्र।"

विस्मय से ब्राह्मण का चेहरा देखते ही रह गए थे अर्जुन। भला श्रीकृष्ण को कैसे किससे ज्ञात हुआ कि अर्जुन पश्चिम समुद्र तट तक आ पहुंचे हैं ? ब्राह्मण ने उनकी दृष्टि में बैठा विस्मय पढ़ लिया था। कहा, "श्रीकृष्ण जितने बड़े योगी हैं पांडव ! उससे कहीं अधिक तीव्र दृष्टि वाले राजनीतिज्ञ भी हैं। उनके गुप्तचर उनके अपने ही राज्य में नहीं, अन्य राज्यों में भी बिखरे हुए हैं। तुम कहां, किस क्षेत्र में किससे भेंट कर रहे हो, क्या कर रहे हो, किस उद्देश्य से आए हो, ऐसी सारी सूचनाएं द्वारकापति तक पहुंचती रही होंगी। विस्मत होने की आवश्यकता नहीं है ?"

श्रीकृष्ण से अनेक बार मिले थे अर्जुन, प्रभावित भी थे, किन्तु राजा श्रीकृष्ण का यह रूप चमत्कृत कर देने वाला था। उससे भी अधिक चमत्कृत यह जानकर हुए थे कि श्रीकृष्ण उनका स्वागत करने के लिए पहले से चले आ रहे थे। मन पहली भेंट ने ही श्रीकृष्ण के प्रति स्नेहादर से भर रखा था; किन्तु यह जानकर लगा था, जैसे यादवपति में जीवन-व्यवहार की वे सारी विशेषताएं मौजूद हैं, जो किसी का भी हृदय जीत सकती हैं। ब्राह्मण के निवास पर रुककर अर्जुन ने उनकी प्रतीक्षा की थी।

श्रीकृष्ण आये, तो लगा था कि प्रसन्नता और आनन्द उनके चेहरे पर कांति बनकर बिखरे हुए हैं। अर्जुन चकित होकर कृष्ण को देखते ही रह गए थे। लम्बी यात्रा के बावजूद आखिर क्या कारण था, जिसने श्रीकृष्ण के मुख को उस तरह चमक से भर रखा था ?

श्रीकृष्ण आगे बढ़े, अर्जुन उठे ही थे अपने स्थान से कि उन्होंने अर्जुन को बाहुपाश में भरकर हृदय से लगा लिया। भरे गले से कहा, "प्रभास-तीर्थ क्षेत्र में तुम्हारा स्वागत है कुन्तीसुत। हम यादव, वृष्टि और अन्धक तुम्हें यहां पाकर प्रसन्न हैं। मैं तुम्हें द्वारका में कुछ समय निवास के लिए आमन्त्रित करने उपस्थित हुआ हूं।"

अर्जुन श्रीकृष्ण की स्नेहज्ञ वाणी और आत्मीयतापूर्ण स्वागत से इतने हतप्रभ हुए थे कि सहसा आभार के शब्द भी नहीं सूझे। बस, मित्र की पीठ पर थपकियां देते हुए अपने भीतर उबलते उद्गारों की अभिव्यक्ति कर दी थी।

श्रीकृष्ण के सेवकों ने प्रभासतीर्थ क्षेत्र में ही उस रात्रि निवास की व्यवस्था कर रखी थी। अर्जुन का राजसी स्वागत हुआ। थकान तो श्रीकृष्ण के दर्शन भर से मिट गई थी, तिस पर आत्मीयतापूर्ण स्वागत ने श्रीकृष्ण के प्रति गहरे स्नेह से भर दिया था उन्हें।

दूर जंगलों से यात्रा करते आए अर्जुन ने दिव्य भोजन प्राप्त करके उस रात खूब गहरी नींद ली। भोर हुए स्नानादि से निवृत हो जलपान पर श्रीकृष्ण ने कहा था, "इस रमणीय क्षेत्र की यात्रा का अपना ही आनन्द है पांडुपुत्र ! मेरी इच्छा है कि तुम रैवतक पर्वत को भी देखो।

अर्जुन ने स्वीकार किया था प्रस्ताव। वहां से रैवतक पर्वत चल पड़े थे वे। श्रीकृष्ण के राजसी रूप को पहली बार देखा था उन्होंने। उनकी सतर्कता और मीठे व्यवहार ने भी बहुत प्रभावित किया था। यह प्रभाव उस समय अधिक बढ़ गया, जब रैवतक पर्वत पर पहुंचे।

सचमुचत चकित कर देने वाली व्यवस्था की थी श्रीकृष्ण ने। पर्वत क्षेत्र का एक हिस्सा पहले से ही साफ किया जा चुका था। इस साफ किए गए हिस्से में खान-पान की सारी व्यवस्थाओं के अतिरिक्त निवास और आमोद-प्रमोद की भी अनेक वस्तुएं जुटाई गई थीं। नृत्य-गान आदि की भी व्यवस्था थी। अर्जुन अपने मित्र के इस स्नेह-स्वागत में दूर-दूरंत तक की गई यात्रा और उसकी सारी थकान भूल गए थे। मन श्रीकृष्ण के प्रति आभार से इतना भर गया था कि शब्द खोजकर भी उपयुक्त शब्द नहीं पा रहे थे कि क्या कहें ? किस तरह श्रीकृष्ण का आभार व्यक्त करें ?

भरी, नेह भीगी दृष्टि से मित्र को देखते। यह देखना अधिक स्नेह से नहला देता। श्रीकृष्ण की आंखों में विचित्र-सा सम्मोहन था। यह सम्मोहन शब्दों को होंठों पर ही थाम लेता।

श्रीकृष्ण की दृष्टि ? अर्जुन स्मरण कर उठे हैं। सम्भवतः पहली-पहली बार अर्जुन को वही लगा था कि श्रीकृष्ण असमान्य हैं। उनकी आंखें

शब्द, व्यवहार, यहां तक कि मुसकान भी सामान्य नहीं है। पुतलियों पर

एक ज्योति-सी तिरती थी। मुसकान नीले सागर-सी अनंत गहराइयां लिए हुए और शब्द एक गूंज की तरह दूर-दूरंत दिशाओं से मन में उतरते हुए।

पूछ भी लिया था उनसे, "मित्र, तुम्हारी आंखें, मुसकान व्यवहार सभी मन हर लेने वाले हैं। कहीं कोई जादू तो नहीं करते हो तुम ?"

हंसे थे श्रीकृष्ण। यह हंसी भी जादू-जैसी ही लगी थी उन्हें। बोले थे, "यह तुम्हारा आत्मीयतापूर्ण स्नेह है कि तुम सरलता को जादू समझ रहे हो, किरीटी !".

पर लगा था कहीं कुछ छिपा लिया है श्रीकृष्ण ने। क्या छिपाया है, उसे शब्दों में अभिव्यक्त करना कठिन है, पर कुछ-न-कुछ छिपाया है, यह निश्चित ! व्यग्र होकर कहा था, "यदि तुम्हारी सरलता इतनी जटिल है, तब जटिलता कैसी होगी, इसकी कल्पना भर से डर रहा हूं श्रीकृष्ण ?"

बहुत धीमे हंसे थे श्रीकृष्ण। स्वर ऐसे, जैसे जलतरंग बजी हो। सद्यजात-बालक जैसी भोली मुसकान होठों के गिर्द बिखराये हुए उत्तर दिया था श्रीकृष्ण थे, "कुन्तीपुत्र। सरलता से अधिक जटिल, कोई जटिलता नहीं हो सकती।"

सहसा अर्जुन ने अनुभव किया था कि श्रीकृष्ण की मुसकान आकाश की तरह अनंत और विशाल हो गई है। उसका ओर-छोर पाना कठिन ! स्तब्ध होकर इस तरह देखते रह गए थे जैसे विस्मय का साक्षात् दर्शन किया हो।

और श्रीकृष्ण अप्रभावित, उसी तरह मुसकराते हुए। उसी तरह सरल, ओर उतने ही जटिल।

श्रीकृष्ण की उस दृष्टि को कभी नहीं भूल सके हैं अर्जुन। संभवतः वही क्षण था जब लगा था कि श्रीकृष्ण की उस मुसकान में किसी द्रव की तरह घुले जा रहे हैं। उनका अपना अस्तित्व श्रीकृष्ण में विलीन हो रहा है। इतना कि अब श्रीकृष्ण से विलग अपने को अनुभव करना भी अर्जुन के लिए कठिन। वही क्षण तो था, जिसके बाद प्रति पल अर्जुन के लिए

श्रीकृष्ण उनका पूर्णत्व बन गए थे। उनके बिना अर्जुन अधूरे ! उनका होना अर्जुन के व्यक्तित्व की अनिवार्यता ! उनका स्मरण अर्जुन की शक्ति उनकी उपस्थिति अर्जुन का सत्य। उनसे अलग होकर अर्जुन किसी भी क्षण अर्जुन नहीं।

स्मरण आता है, उस रात्रि रैवतक पर्वत पर श्रीकृष्ण से देर तक वार्तालाप करते रहे अर्जुन ने नींद लेने के पूर्व अनुभव किया था, जैसे अपने व्यक्तित्व को इस तरह श्रीकृष्णमय करके वह कुछ खो रहे हैं। एक पल के लिए उन्होंने स्वयं को श्रीकृष्ण से परे अपने अस्तित्व में बनाए भी रखना चाहा था; पर लगा था कि श्रीकृष्ण मन-मस्तिष्क के हर कोने में अदृश्य भाव से समाहित हो चुके हैं या यों कि श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में अर्जुन लोप होने लगे हैं। उनके नेह से भीगे हुए, उनके ज्ञान में छात्र-भाव से डूबे हुए, उनके शब्द माधुर्य में संगीत का सम्मोहन अनुभव करते हुए, उनकी दृष्टि तरंगों से जकड़े हुए उनकी आत्मीयता से अवश। हर तरह तो जीत लिया था अर्जुन को ! शब्द, शक्ति, श्रवण, अनुभव कुछ भी श्रीकृष्ण से विलग नहीं रह गए हैं।

और जितने दिनों रैवतक पर्वत पर रहे थे अर्जुन। श्रीकृष्ण के साथ अधिक और अधिक घुलते गये। प्रतिक्षण श्रीकृष्ण उनकी शक्ति बनते गए थे, उनका विवेक बन चुके थे, उनका आत्म बन चुके थे।

रैवतक पर्वत से विदा लेकर जब श्रीकृष्ण उन्हें द्वारकापुरी ले चले, तब भी वे उसी सम्मोहन से बंधे चल पड़े थे।

द्वारका भ्रमण के बाद पुनः रैवतक पर्वत को ही निवास बनाया था उन्होंने। पर्वत क्षेत्र में बड़े-बड़े भवन बनाए गए थे, विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम रखे गए थे। इन सभी के बीच अर्जुन और श्रीकृष्ण का वह साथ गहरा होता गया था। मित्रता सरलता के उस चरम पर जा पहुंची थी, जहां दूसरों के लिए वह जटिलता बन गयी और उसी समय में यह मित्रता, सम्बन्ध से जुड़कर अधिक प्रगाढ़ हो गई।

वह दिन अर्जुन के स्मरण में एक फूल की महक जैसा बसा हुआ है,

जब रैवतक क्षेत्र में श्रीकृष्ण के साथ घूमते हुए उन्होंने पहली-पहली बार सुभद्रा को देखा था। कांतिमयी, कांचनदेही सुभद्रा।

अर्जुन और श्रीकृष्ण, सन्ध्या समय टहल रहे थे कि तभी अर्जुन ठिठक-कर रह गए थे।

वह सलेलियों और सेविकाओं के बीचोबीच खड़ी थी। किसी वात पर खिलखिलाती हुई। स्वर्णाभूषणों और रत्नों से लदी आकर्षक और बहुमूल्य वस्त्रों वाली सज्जा जतला रही थी कि वह निस्सन्देह कोई राज कुमारी है। अर्जुन उस गठी देह और आकर्षक हंसी से जकड़े हुए खड़े थे। श्री कृष्ण टहलते हुए उनसे कुछ कदम आगे निकल चुके थे।

उसने अर्जुन की ओर देखा भी नहीं था। अपने में ही खोई हुई सखियों के बीच हंस रही थी और अर्जुन शिलावत खड़े, मुग्ध देखते हुए। लग रहा था कि उनका शरीर सुभद्रा को दृष्टि की राह स्पर्श कर रहा है। यह स्पर्श धीमे-धीमे ही सही मन को काम ज्वार से भरता हुआ। बहुत थामना चाहा था स्वयं को; किन्तु सुभद्रा के आकर्षण ने बुरी तरह जकड़ लिया था उन्हें! रह-रहकर थूक का घूंट निगलते सुभद्रा की मांसल देह दृष्टि को अधिक और अधिक खींचती जाती।

कितनी बार स्वयं को रोका था उन्होंने, "क्या कर रहे हो, अर्जुन! तुम श्रीकृष्ण के अतिथि हो। यहां, किसी कन्या को लेकर इस तरह विचार करना भी तुम्हारी धृष्टता है। और फिर तुम प्रायश्चित करने निकले हो इस तरह कामातुर होना तुम्हारे लिए उचित नहीं।"

पर मन नहीं रुका और मन से अवश अर्जुन भी नहीं रुक सके आगे बढ़कर सुभद्रा के पास जा पहुंचे, इसके पूर्व ही चौंक गये थे। श्रीकृष्ण ने पीछे से कन्धे पर हथेली रख दी, पूछा, "क्या हुआ मित्र? देखता हूं कि तुम्हारा मन कहीं अटक गया है?"

"हूं?" चौंक पड़े थे अर्जुन। सकपकाकर कहा था, "कुछ नहीं, ऐसे ही।" बोलते हुए भी दृष्टि फिर-फिर उचटकर सुभद्रा की ओर जाने लगी थी। उनके अपने मन से बेकाबू होती हुई। किसी पंछी की तरह कुचांचें भरती।

श्रीकृष्ण ने जैसे उनके भीतर को सुन-जान लिया। कहा था, "पुरुष-

सिंह ! वह मेरी बहन सुभद्रा है।

अर्जुन का चेहरा लज्जा से रक्ताभ हो उठा था। सम्पूर्ण मन के बिखराव को जैसे-तैसे सहेजकर कहा था, "वही देख रहा हूं वासुदेव ! असाधारण सुन्दरी है तुम्हारी बहन !"

श्रीकृष्ण की ओर चेहरा उठाना चाहते थे, उनसे दृष्टि मिलाने की भी इच्छा हो रही थी; किन्तु लग रहा था जैसे कोई दोष कर बैठे हैं। जिस मित्र के यहां अतिथि बनकर ठहरे थे, उसी की बहन को लेकर कामपीड़ित हुए ! श्रीकृष्ण की तीखी नजर से छिप नहीं सका होगा।

श्रीकृष्ण हंसे, "देखता हूं कुन्तीनन्दन तुम सुभद्रा पर मुग्ध हुए हो ?"

अर्जुन ने बेबसी और अपराध-बोध से होंठों पर एक थरथराहट अनुभव की। जैसे-तैसे उस थरथराहट को थामा।

"संकोचहीन होकर बतलाओ, मित्र !" श्रीकृष्ण ने सहज स्वर में पूछा था, "यदि मेरा अनुमान सत्य है, तब मैं पितृ से सुभद्रा और तुम्हारे विवाह की स्वीकृति मांग सकूंगा ?"

अर्जुन चकित होकर देखने लगे थे कृष्ण को। अद्भुत ! अर्जुन की उस मुग्धता को दोष न मानकर श्रीकृष्ण ने कितनी सहजता से बात की थी। विश्वास नहीं हुआ था कि वह सब जो सुना है, श्रीकृष्ण का कहा हुआ हा है ?

श्रीकृष्ण उत्तर की राह देखते देख रहे थे उन्हें। अर्जुन ने संकोच त्यागकर कह दिया था, "हां, मित्र ! मैं सुन्दरी सुभद्रा से विवाह करके प्रसन्न होऊंगा। इतना कि संभवतः सम्पूर्ण पृथ्वी का साम्राज्य पाकर भी न हो सकूं !"

"मैं प्रसन्न हुआ।" श्रीकृष्ण उसी स्नेह और आत्मीयता से बोले थे, "कितु एक बात से चिन्तित हूं कुन्तीसुत !"

अर्जुन ने चौंककर उन्हें देखा।

श्रीकृष्ण ने कहा, "क्षत्रियों में विवाह के लिए कन्या का स्वयंवर करने की प्रथा है और वैसा होने पर सम्भव है कि सुभद्रा तुम्हें पसन्द न करे ? किसी अन्य क्षत्रिय राजा को वर ले ?"

अर्जुन का चेहरा मुर्झा गया था।

श्रीकृष्ण ने तुरत कहा था, "पर एक राह और है अर्जुन !"

"क्या ?"

"क्षत्रियों में कन्या हरण की व्यवस्था भी मान्य है !" श्रीकृष्ण ने चपलता से अर्जुन की आंखों में देखते हुए बतलाया था, "बलपूर्वक कन्या-हरण करके भी क्षत्रिय विवाह करते आए हैं। यदि इस तरह तुम सुभद्रा को पा सके तो उचित होगा। स्वयंवर में ख़तरा है !"

चकित रह गये थे अर्जुन। अविश्वास से श्रीकृष्ण को देख रहे थे जैसे पूछ रहे हो, "तुम···तुम स्वयं अपनी बहन के हरण की सलाह दे रहे हो वासुदेव !"

श्रीकृष्ण ने कहा था, "यही विचार रहे हो न कि मैंने ऐसा क्यों कहा ?"

अर्जुन चुप रहे।

"इसलिए कि मैं समझता हूं कि तुम सुभद्रा के योग्य वर हो···।" श्रीकृष्ण उसी सहजता से बतलाने लगे थे, "मैंने तुम्हारी दृष्टि में यह पाया है कि सुभद्रा को तुमसे वांछित स्नेह-समर्पण मिल सकेगा। उसका शुभ भी इसी में देखता हूं, इसी कारण तुम्हें यह परामर्श दिया है।"

अर्जुन चुप थे।

श्रीकृष्ण ने बांह थामकर कहा था, "आओ, अब चलें !"

श्रीकृष्ण को लेकर जब-जब विचार करते हैं अर्जुन लगता है कि किसी अनंत समुद्र के अतल में जा उतरे हैं और खोजने का प्रयत्न कर रहे हैं कि कहां है उसका आदि और कहां है अंत। कितनी है उसकी गहराई और कितने हैं उसके भीतर रहस्य !

अनेक बार इसी तरह समुद्र-यात्रा की है अर्जुन ने। जब-जब एकांत पाया है, जब-जब श्रीकृष्ण मन-स्मरण में कौंधे हैं—अर्जुन ने यह यात्रारंभ कर दिया है किन्तु किसी बार, किसी छोर को नहीं छू सके। किसी मनुष्य को जानकर भी उससे इतना अनजाना रह पाना क्या संभव है ? मन में प्रश्न उठा है -- पर लगा है कि अस व है !

तब श्रीकृष्ण को क्यों नहीं पहचान पाते हैं अर्जुन ?

संभवतः इसलिए कि श्रीकृष्ण नर नहीं—नारायण हैं ! आदि अंत से हीन, अनंत !

कितने-कितने रूप हैं श्रीकृष्ण के ? याद करें, तो पूरी तरह याद भी नहीं हो पाते ! कितने-कितने कोणों से वह व्यक्तित्व ज्योति प्रस्फुटित हुई हैं। उस ज्योति के कितने-कितने रंग ? किसी रंग की कोई थाह नहीं, श्रीकृष्ण को लेकर हजार प्रश्न उठते हैं अर्जुन के मानव-मन में; पर उत्तर नहीं मिलते ! संभवतः श्रीकृष्ण प्रश्न हैं ही नहीं। वह केवल उत्तर हैं। हर प्रश्न के जन्मदाता भी वही, जन्म हर्ता भी वही। वही आदि, वही अंत !

द्रौपदी स्वयंवर के वाद पहली भेंट हुई थी श्रीकृष्ण से। उस समय उतने नहीं धुले -मिले थे अर्जुन, पर प्रभावित अवश्य हो गये थे। बाद में सुभद्रा-हरण के समय, जितने रूप-रंगों में श्रीकृष्ण को देखा था अर्जुन प्रति क्षण अविश्वसनीय अचरज से चकित होते गये थे। उस समय तो बहुत ही चकित हो गये थे, जब रैवतक के प्रकृति-क्षेत्र से निकलकर अर्जुन द्वारका के राजभवन में अतिथि हुए। वह दिन भी अविस्मरणीय है अर्जुन के लिए।

दोनों मित्र दोपहर के समय चतुरंग खेल रहे थे। तभी द्वारपाल उपस्थित हुआ था। अभिवादन करके निवेदन किया था उसने, "यदुश्रेष्ठ की जय हो ! पांडवराज युधिष्ठिर तक भेजा गया दूत समाचार लेकर उपस्थित हुआ।"

अर्जुन चकित। श्रीकृष्ण ने महाराज युधिष्ठिर तक कोई दूत भेज रखा है और किस कारण भेज रखा है, यह अर्जुन को ज्ञात ही न था। कुछ पूछें, इसके पूर्व ही श्रीकृष्ण बोले थे, "भेजो उसे।"

अर्जुन शान्त रहे। दूत उपस्थित हुआ। प्रणाम करके उसने कहा था, "महाराज युधिष्ठिर आपका समाचार पाकर प्रसन्न हुए राजन् ! उन्होंने कुन्तीसुत अर्जुन और राजकुमारी सुभद्रा के विवाह-सम्बंध हेतु अपनी

अनुमति दे दी है।"

श्रीकृष्ण ने शान्त होकर सुना। अर्जुन हतप्रद रह गये थे। विचित्र हैं श्रीकृष्ण। उन्होंने अग्रज से विवाह सम्बन्ध पर स्वीकृति भी मंगवा भेजा? अभी सोच ही रहे थे कि श्रीकृष्ण ने कहा था, "यह आवश्यक था पांडु-पुत्र! जिस परिवार में यादवकन्या जा रही है, उसके पूज्यों की अनुमति आवश्यक थी।"

अर्जुन कुछ बोल नहीं सके। श्रीकृष्ण ने कहा था, "राजकुमारी सुभद्रा कल ही देवी पूजन के लिए रैवतक पर्वत जा रही हैं। उनके हरण के लिए वही समय उपयुक्त रहेगा अत: मैं समझता हूं कि तुम वहीं पहुंचकर उनके पूजा निवृत्त होते ही उनका हरण कर ले जाओ!"

अर्जुन पर बोलते नहीं बन रहा था। प्रतिक्षण आश्चर्य के लगातार झटके झेल रहे थे वह।

श्री कृष्ण ने आगे कहा था, "इस कार्य में मेरा तीव्रगामी रथ उपयुक्त रहेगा! उसमें मैं अस्त्र-शस्त्र भी रखवाये देता हूं। यदि यादव वीर तुमसे युद्ध करने की इच्छा करें, तब तुम उनसे जूझ सकोगे। कल जब राज-कुमारी पूजा के लिए रवाना होंगी, तुम आखेट की इच्छा से उसी ओर रवाना हो जाओगे! शेष सब तुम्हें कर ही लेना है!" कहकर उठ पड़े थे कृष्ण।

अर्जुन न कुछ पूछ सके थे, न पूछने की मन:स्थिति रही थी। बस, आश्चर्यचकित उन्हें जाते हुए देखते रहे।

अगले दिन सब कुछ बहुत यान्त्रिक ढंग से हुआ था। भोर के साथ ही सेवक ने समाचार दिया था, "राजन्! आखेट के लिए महाराज श्रीकृष्ण ने अपना रथ भेजा है।

अर्जुन ने सुना। कुछ कहा नहीं। सेवक समाचार देकर चला गया था। अर्जुन जल्दी-जल्दी तैयार होने लगे थे। रथारूढ़ हुए, श्रीकृष्ण ने मुसकराकर विदा किया था उन्हें। धीमे से कहा था, "सुभद्रा अब तक रैवतक क्षेत्र में पहुंच चुकी होगी!"

अर्जुन ने सशंक भाव से सारथी को देखा।

श्रीकृष्ण ने मुसकराकर कहा, "आश्वस्त हो, कुन्तीपुत्र! यह विश्वस्त

व्यक्ति हैं।

अर्जुन की आंखें श्रद्धा से भर आई थीं। श्रीकृष्ण के गले मिले, फिर रथारूढ होकर चल पड़े।

जिस मार्ग से सुभद्रा लौटने वाली थीं, उसी मार्ग में निश्चित स्थान पर सारथी ने रथ थाम लिया था।

अर्जुन के हृदय की धड़कन प्रतिपल बढ़ती जा रही थी। उस मार्ग की ओर आंखें गड़ा रखी थीं, जिस मार्ग से सुभद्रा आने को थीं।

निश्चित स्थान और समय पर जैसे ही सुभद्रा मार्ग से निकलीं, अर्जुन कृष्ण के तीव्रगामी रथ से उतरकर तुरंत ही सुभद्रा के पास जा पहुंचे। सहेलियों और सेवकों से घिरी सुभद्रा कुछ सोच-समझ सकें, इसके पूर्व ही अर्जुन ने झटके से सुभद्रा की कलाई पकड़ी और अपने रथ की ओर बढ़ चले।

चकित, स्तब्ध रह गये सेवकों और सुभद्रा की सहेलियों ने जब तक उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, तब तक सुभद्रा को रथ पर सवार करवाकर अर्जुन तेजी से दूसरी दिशा में चल पड़े थे।

पल भर में चीखते, शोर मचाते यादव स्त्री-पुरुष उनकी दृष्टि से ओझल हो गये थे।

रथ वायुगति से दौड़ा जा रहा था और सहमी सकुची सुभद्रा स्तब्ध-सी कभी अर्जुन और कभी अपने-आपको देखती रह गई थीं! इसके पूर्व कि समाचार द्वारकानगरी तक पहुंचे, अर्जुन रथ को बहुत आगे निकाल ले जाना चाहते थे। उस पल यह सोचने का समय भी नहीं मिल रहा था कि द्वारका में सुभद्रा-हरण की क्या प्रतिक्रिया हो रही होगी!

उस दिन के स्मरण ने अर्जुन को रोमांच से भर दिया है। सोचना प्रारम्भ किया था श्रीकृष्ण से और श्रीकृष्ण के स्मरण भर ने विगत की समूची जीवन-यात्रा ही करवा डाली है।

असल में अर्जुन का जीवन श्रीकृष्ण से अलग कुछ है ही नहीं। जब-जब विगत के किसी खिड़की-झरोखे में झांककर देखेंगे, उन्हें अपने जीवन की हर घटना और पल के साथ-साथ श्रीकृष्ण जुड़े दीखेंगे।

सुभद्रा-हरण के आदि से जितने जुड़े थे श्रीकृष्ण, उससे कहीं अधिक जुड़े थे उस काण्ड के अन्त से। बहुत बाद में वह सब पता चला था अर्जुन को, जो सुभद्रा को हरण कर ले जाने के बाद द्वारका में घटा था।

वह सब सुन-जानकर एक बार फिर चकित हो रहे थे अर्जुन। श्रीकृष्ण को किस तरह समझ सकेंगे? सुभद्रा को देखकर सुभद्रा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं सोच समझ सके थे अर्जुन, जबकि बाद में द्वारका में घटी घटनाओं से पता चला था कि सुभद्रा को लेकर श्रीकृष्ण पूरे कुलों, जातियों, परिवारों और सम्बन्धों की राजनीति पर सोच गए थे।

अद्भुत।

हां, श्रीकृष्ण के नाम-स्मरण के साथ एक यही शब्द स्मृति में उभरता है केवल अद्भुत्!

याद आया है—श्रीकृष्ण ने उस समय बात न संभाली होती तो सुभद्रा का हरण क्या सहज हो सकता था? बलराम से लेकर, सभी यादव योद्धा उत्तेजित हो उठे थे। युद्ध के लिए तत्पर!

द्वारका नगरी में कोलाहल हो गया था। पलक मारते युद्ध के लिए तत्पर होकर यादव वंश के भोज, वृष्णि और अन्धक योद्धा घरों से निकल पड़े थे। यादव सेना सज्जित हो गई थी।

घोर अनर्थ! जिसे श्रीकृष्ण ने मित्रभाव से पूजा, उसीने यादवों की कन्या का हरण करके वंश को अपमानित किया! प्रतिशोध आवश्यक है। सब उत्तेजित थे, सब तिलमिलाए हुए। बलभद्र का क्रोध चिंघाड़ों तक जा पहुंचा था; किन्तु सबसे शान्त बैठे थे श्रीकृष्ण। चुप और सहज।

बलभद्र ने कहा था, "तुम क्यों चुप हो जनार्दन! बोलते क्यों नहीं?"

"क्या बोलूं?" श्रीकृष्ण ने सरलता से उत्तर दिया था, "आप सभी कुलश्रेष्ठ जितना जो कुछ बोल रहे हैं, उस उत्तेजन में मुझे बोलने योग्य कुछ दीख ही नहीं रहा है।"

"श्रीकृष्ण!" बलभद्र क्रोधावेश में कांप रहे थे, "अर्जुन को तुम्हारा मित्र जानकर ही हमने उसका इतना स्वागत सत्कार किया, किन्तु उस दुष्ट ने मित्र होते हुए भी तुम्हारी बहन का हरण करके समूचे यादवों को अपमानित कर डाला है। उसने हमारे सारे उपकार भुला दिए और बदले में हमारा अपकार ही नहीं, अपमान किया।"

श्रीकृष्ण ने अविचलित रहकर शान्त भाव से बलभद्र के क्रोध को सहा। सिर झुकाए बैठे रहे।

बलभद्र कहे जा रहे थे, "अब गर्दन झुकाए क्यों बैठे हो गोविन्द! बोलते क्यों नहीं? अर्जुन कैसा मित्र है तुम्हारा, जिसने सुकुमारी सुभद्रा का बलपूर्वक अपहरण किया है। उस नीच को जब तक हम दण्डित न कर देंगे तब तक हमें शान्ति नहीं मिलेगी।"

श्रीकृष्ण चुप।

"मुझे आश्चर्य है अच्युत!" बलभद्र और गरजे थे, "इतना अपमान सहकर भी तुम शान्त बैठे हो? तुम्हें धिक्कारने की इच्छा होती है कृष्ण!"

श्रीकृष्ण ने गहरा श्वास लिया, बोले, "क्या कहूं? तुम इतना कुछ तो कहे जा रहे हो भइया! देखता हूं कि आवेशवश हम सब समूची स्थिति पर विचार ही नहीं कर पा रहे हैं।"

"इसमें क्या विचार हो सकता है?" बलभद्र बोले, "उस नीच ने यादवों को अपमानित किया है।"

श्रीकृष्ण उठे, "शान्त हों, पूज्य! तनिक शांति के साथ विचार करें। तो आप पाएंगे कि बहन सुभद्रा के हरण से हमारा वंश न तो लांछित हुआ है, न ही अर्जुन ने हमें किसी तरह अपमानित किया है।"

स्तब्ध हो रहे थे यादव वीर। चकित होकर श्रीकृष्ण को देखने लगे।

श्रीकृष्ण ने कहा था, "अर्जुन सामान्य राजकुल के व्यक्ति नहीं हैं भइया ! वे यशस्वी राजा शान्तनु के वंश से हैं। उनके कुल में भीष्म और गांधारी जैसे आदर्श चरित्र हैं। वे केवल बड़े राजकुल के अंश ही नहीं, अपना श्रेष्ठता और वीरता के कारण दूर-दूरन्त प्रसिद्ध हैं। उनसे सम्बंध जोड़कर हम अपमानित कहां हुए हैं ? हमें तो प्रसन्न होना चाहिए कि समय के श्रेष्ठतम राजकुल और शक्ति से हमारे राजवंश का संबध जुड़ गया है ? इस तरह यादवों की शक्ति भी बढ़ी है, राजसम्बन्ध के कारण गौरव भी बढ़ा है। हमें उत्तेजनावश नहीं, धैर्य से समूची स्थिति पर विचार करना चाहिए···"

सब चुप थे। इस तरह तो सोचा ही नहीं था किसी ने। बलराम को भी सुनकर सब कुछ ठीक लगा था, पर मन सहसा सहमत नहीं हो पा रहा था। कहा, "पर गोविन्द उसने हमारे स्नेहादर और आतिथ्य को दुर्लक्ष्य कर हमारी कुल-कन्या का अपहरण तो किया ही है। इस तरह हमें कितनी सामाजिक बदनामी दे दी है···"

"यह बदनामी उस समय और बढ़ जाएगी बड़े भइया, जब हम अर्जुन से युद्ध में पराजित हो जाएंगे और वह सफलतापूर्वक सुभद्रा को जय कर ले जाएंगे !"

"यह असम्भव है।" बलराम चीख पड़े थे, "उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह यादवों को परास्त कर सके।"

यह कहते समय हमें स्मरण रखना होगा भइया कि अर्जुन से बड़ा धनुर्धर इस पृथ्वी पर और कोई नहीं है।"

"पर गोविंद !" अकुला गए थे बलभद्र श्रीकृष्ण का अति सहजता और शब्द गांभीर्य ने उन्हें चौंकाया था। मन में एक शंका उठी थी—कहीं श्रीकृष्ण ही तो इस सारे षड्यंन्त्र की जड़ में नहीं हैं।" जानते थे छोटे भाई का स्वभाव। बचपन से खूब देखा-समझा था कृष्ण को। पल के सौंवें हिस्से में बदलने वाले वार्ताचातुर्य और विषय प्रतिपादन की असामान्य क्षमता भी देखी थी। कभी-कभी श्रीकृष्ण की चपल दृष्टि चौंका देती थी। जो कहते, उससे परे कहीं बहुत दूर तक सोचा-समझा करते थे।

पर श्रीकृष्ण का यही वैशिष्ट्य तो था, जिसने बलराम के मन में छोटे भाई के प्रति एक आश्वस्त भाव पैदा किया था। श्रीकृष्ण शब्द-ध्वनि के पूर्व

तरंग-गति से उस शब्द के प्रभाव और परिणाम को जानने की असामान्य क्षमता रखते हैं। उनका असत्य भी सत्य प्राप्ति की चेष्टा से जुड़ा होता है और उनका सत्य शाश्वत है।

श्रीकृष्ण ने उठकर सलाह दी थीं, "भइया ! मैं आपके पराक्रम से परिचित हूं किन्तु चाहता हूं कि धैर्य रखकर इस सम्पूर्ण स्थिति पर विचार करें। क्या यह सम्भव नहीं है कि हम बात यहीं समाप्त करके सुभद्रा और अर्जुन के विवाह हेतु प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दे दें ?"

"पर माधव ! इस तरह हमारी अपकीर्ति होगी।" बलभद्र चाहते हुए भी मन को सहमत नहीं कर पा रहे थे। कहा था, "यादवों की पुत्री का इस तरह हरण हो जाए और हम सेवाभाव से हरणकर्ता के सामने घुटने टेक दें, कहां तक ठीक होगा ?"

"युद्ध करके इसे मिथ्या प्रतिष्ठाप्रश्न बनाना भी तो उचित नहीं है बड़े भइया !" श्रीकृष्ण ने ठंडे जल की तरह शांत स्वर में कहा, "तनिक विचार कीजिए ! अर्जुन कुरुकुमार हैं···जाति में भी श्रेष्ठ क्षत्रिय ! क्षत्रियोचित गुण और वीरत्व भी है उनमें···भला उनसे सुयोग्य पात्र सुभद्रा के लिए कहां मिलेगा ? फिर उनकी माता कुन्ती हमारी जानी-पहचानी हैं। शांत और सरलहृदया···द्रौपदी जैसी तपस्विनी के साथ रहकर सुभद्रा प्रसन्न ही होंगी। मेरे विचार में तो यह सम्बन्ध हर्षपूर्वक स्वीकार करने योग्य है। फिर मैं ठहरा आपका छोटा भाई। जैसा आप सभी निर्णय करेंगे वही करूंगा !"

एक क्षण के लिए यादवों की सभा में सन्नाटा बिखर गया था। सोचपूर्ण सन्नाटा। बहुत धीमे और मीठे, शांत सहज शब्दों में श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा था, वह सहसा ही सभी मस्तिष्क में शांत जल की सतह जैसा बिखर गया था। बलभद्र की उत्तेजना कम हुई थी। सच ही तो है। श्रीकृष्ण जो कह रहे हैं, उसमें दोष क्या है ?"

श्रीकृष्ण शान्त बैठे थे। जानते थे कि समयानुकूल शान्त वचनों ने बड़े और सरलमन भाई को प्रभावित किया होगा। निश्चिन्त थे। बलभद्र बोले थे, "गोविन्द ने सम्भवतः उचित विचार किया है, कुरु-कुल से सम्बन्ध बनाने में यादव-वंश की श्री समृद्धि ही होगी। हमें अर्जुन और सुभद्रा का विवाह

कर देना चाहिए।"

"किन्तु देव !" सात्यकि उठे। बोले, "इस बीच अर्जुन कहां जा पहुंचे होंगे और किस तरह हम उन तक इस स्नेह-सम्बन्ध के स्वीकार का सन्देश भिजवा सकेंगे, विचारणीय है।"

उत्तर श्रीकृष्ण ने दिया था, "वह ज्ञात कर लेना कठिन नहीं होगा, सात्यकि ! पता लग जाएगा।"

सभा विसर्जित हो गई थी। बलभद्र, सात्यकि, सारण आदि विवाह-समारोह की तैयारियों में जुट गए थे जबकि श्रीकृष्ण, अर्जुन तक सन्देश भेजने की व्यवस्था में।

अर्जुन को सन्देश मिला तो चकित नहीं हुए थे वह। सब कुछ श्रीकृष्ण का किया-धरा होगा जानते थे। सन्देशवाहक तिलक लेकर पहुंचा था। कुन्ती पुत्र को प्रणाम करके उसने यादवों का निर्णय कह सुनाया था। उत्तर में अर्जुन ने स्नेहामंत्रण स्वीकार किया।

फिर बलभद्र, के नेतृत्व में यादववंशियों का क्षेत्रागमन हुआ। निश्चित तिथि-समय निकालकर सुभद्रा और अर्जुन को विवाहवंधन में बांधा गया। द्वारका में ही उनके निवास की व्यवस्था हुई।

समाचार हस्तिनापुर पहुंच गया था। इस विवाह सम्बन्ध की क्या प्रतिक्रिया हुई होगी—अर्जुन जानते थे। गुप्तचर से टिप्पणी मिली थी उन्हें। राजा दुर्योधन ने समाचार सुनकर कहा है, "शक्ति से लंगड़े पांडव अब राजनीति की अन्य अपाहिज जातियों से सम्बन्ध बना रहे हैं।"

बहुत बुरा लगा था; पर समाचार सुन रहे श्रीकृष्ण मुसकरा भर दिए थे। कहा था, "राजा दुर्योधन भी हमारे अपने ही हैं सुभद्रा के पूज्य ! निस्संदेह यह कहकर उन्होंने यादवों से मजाक ही किया होगा !"

अर्जुन उत्तेजित थे, "किन्तु इस तरह की टीका टिप्पणी…"

"वह सब इस शुभ समय पर विचारणीय नहीं है धनंजय।" श्रीकृष्ण ने उसी तरह लापरवाही से विषय-प्रवर्तन कर दिया था।

विषय बदलना और अनावश्यक तर्कातर्क में न उलझना श्रीकृष्ण का

स्वभाव रहा है···जितना देखा समझा है उन्हें, लगा है जैसे वे प्रतिक्रिया-हीन हैं। यह भी उनकी असामान्यता उत्तेजना उनपर वश नहीं कर सकती, हर्ष उन्हें उत्तेजित नहीं कर पाता, शब्दों से उन्हें कुरेदना असम्भव। एक बार पूछ लिया था, "यह कैसे सम्भव कर पाते हो वासुदेव।"

"क्या ?"

"देखता हूं कि स्थितिप्रज्ञता तुम्हारा स्वभाव बन गई है। किसी भी पल, किसी भी स्थिति और कारण से अप्रभावित रहते हो ? कैसे सम्भव है ?" अर्जुन एक बच्चे की तरह चकित होकर केवल पूछ ही नहीं रहे थे। टकटकी बांधे हुए उन्हें देख भी रहे थे।

श्रीकृष्ण ने स्नेहिल मुसकान से मित्र को देखा, फिर कहा था, "धनंजय ! स्थितिप्रज्ञ रहने के लिए जितेन्द्रिय होना अनिवार्य है। और जितेन्द्रिय व्यक्ति क्रिया होते हैं--प्रतिक्रिया नहीं ! प्रतिक्रिया बनकर मानव जीवन लांछित हो सकता है जबकि क्रिया भाव से जीवन जीना एक तपस्या है। जो लोग स्वयं संचालित होना चाहते हैं, उन्हें यह रहस्य समझ लेना आवश्यक है कि स्वयं संचलन प्रतिक्रिया में नहीं, क्रिया में है। मैं जब-जब कुछ सुनता देखता अनुभव करता हूं—उस समय उसे ग्रहण करते हुए भी आत्मसात नहीं करता बिना विवेक की कसौटी पर कसे हुए मैं न किसी से प्रश्न करता हूं, न उत्तर देता हूं, न कार्य करता हूं···इसी कारण मैं अन्य से अप्रभावित रहता हूं।"

अर्जुन जितना सुन रहे थे, उससे कहीं अधिक दृष्टि का जुड़ाव अनुभव कर रहे थे कृष्ण से। मित्र सम्बोधित करते हुए भी कितनी-कितनी बार लगता था कि किसी व्यक्ति के साथ नहीं, साक्षात् ज्ञान के साथ बैठे हैं··· दर्शित और अदर्शित कोई रहस्य इस ज्ञान से परे नहीं है। अनंत प्रश्नों का भंडार लिए हुए वह एक ऐसे ज्योतिमुख पर आ खड़े हुए हैं, जिससे उत्तरों की असंख्य किरणें फूटती हैं··· हर किरण, हर प्रश्न का अंधकार पोंछती हुई···हर प्रश्न ज्वार की तरह उभरकर सहसा उत्तर की शांत सतह पर आता हुआ ! कुछ भी तो अजाना, अन-पहचाना नहीं रह जाता है !

श्रीकृष्ण जैसे ही जीवन-संबंधों में आए थे, वैसे ही ज्योतिकिरण की भांति अर्जुन के मन-मस्तिष्क में समाते चले गए थे। लगता था कि इन किरणों ने अर्जुन को उनके हर एकांत में भी जकड़ रखा है। उनसे परे होकर अर्जुन निःशेष हो जाएंगे। जीवन, व्यवहार, संसार किसी भी स्तर पर अर्जुन, श्रीकृष्ण से विलग होकर कुछ भी नहीं ! संभवतः यही मनःस्थिति थी, जिसने श्रीकृष्ण से युद्धपूर्व अपने पक्ष का आमंत्रण देते हुए केवल उन्हें मांग लिया था। तब दुर्योधन ने मूर्ख समझा था अर्जुन को।

पर अर्जुन जानते थे कि श्रीकृष्ण को पाकर उन्होंने जय को पा लिया है ! इसलिए कि श्रीकृष्ण जय-विजय से परे एक ऐसा सत्य है, जिनका साथ न तो अर्जुन को जयलोभ के दंभ से भरने देता है, न पराजयबोध की ग्लानि से डराता है। उनकी उपस्थिति मात्र से अर्जुन शक्ति बन जाते हैं।

उस दिन, जब कुरुक्षेत्र युद्ध के पूर्व अर्जुन श्रीकृष्ण से सहायता प्राप्ति के लिए द्वारका की ओर चले, तब मार्ग में समाचार मिला था, "महाराज दुर्योधन भी यादव शिरोमणि श्रीकृष्ण से सहायता लेने जा रहे हैं।"

विचित्र स्थिति थी वह। द्वारका-क्षेत्र में ही नहीं, राजभवन के सामने भी वे आमने-सामने पहुंचे थे।

रथ से उतरे, उस समय भी एक साथ। एक दृष्टि दोनों ने एक-दूसरे को देखा था, फिर तीव्र गति से राजभवन में प्रवेश कर गए थे। अर्जुन ने अनुभव किया था कि कुछ कदम पिछड़ गए हैं दुर्योधन से।

द्वारपालों ने जाने दिया था उन्हें। अर्जुन, द्वारका के दामाद थे और कुरुराज दुर्योधन द्वारका के पूज्य ! दोनों ही तेजी से उस कक्ष की ओर बढ़े जा रहे थे, जिसमें श्रीकृष्ण आराम किया करते थे।

कक्ष में सबसे पहले प्रवेश किया था दुर्योधन ने। देखा रेशमी बिस्तर पर श्रीकृष्ण गहरी निद्रा में सो रहे हैं। एक दृष्टि मुड़कर अर्जुन पर डाली, फिर गौरवपूर्ण चाल में बढ़कर सिरहाने की ओर जा बैठे कौरवेन्द्र

दुर्योधन।

अर्जुन ने निद्रामग्न मित्र को श्रद्धा से देखा था, फिर हौले से चरणों की ओर बैठे रहे। प्रतीक्षारत, जब द्वारकाधीश जागेंगे, तब उन्हें युद्धामंत्रण देंगे। किंतु इस क्षण श्रीकृष्ण की नींद न टूटे, यह याद रखना होगा।

श्रीकृष्ण उसी तरह निद्रामग्न। अर्जुन को लगा था कि नींद में होते हुए भी वह सब कुछ देख रहे हैं। सिरहाने बैठे दुर्योधन को भी और पैरों की ओर विनम्र भाव से बैठे अर्जुन को भी।

देर तक उसी तरह बैठे रहना पड़ा था उन्हें, फिर श्रीकृष्ण के वदन में थिरकन हुई। दुर्योधन ने चौकन्नेपन से उन्हें देखा। अर्जुन सतर्क हुए। श्रीकृष्ण ने पलकें खोलीं -- दृष्टि सामने !

अर्जुन मुसकराए—प्रणाम किया।

दुर्योधन बोल पड़ा था, "द्वारकापति को धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन अभिवादन करता है।"

"अरे ! गांधारी सुत तुम !" श्रीकृष्ण ने चौंककर गरदन घुमाई। कौरवेन्द्र मुसकरा रहे थे। दोनों में से कोई कुछ कह सके, इसके पहले ही श्रीकृष्ण मीठी आवाज में बोल पड़े थे, "आश्चर्य ! देखता हूं दोनों ही कुरुकुमार एक साथ द्वारका को कृतार्थ कर रहे हैं ? कोई विशेष कारण ?"

दुर्योधन ने कहा था, "कारण तुमसे अजाना नहीं है गोविंद !"

"सो तो है, फिर भी तुमसे सुनकर सुख मिलेगा गांधारी सुत !" श्रीकृष्ण पूछने लगे थे।

"मैं युद्ध में अपने पक्ष की ओर से सहायता याचना करने आया हूं, श्रीकृष्ण !" दुर्योधन ने कहा था, "और···और अर्जुन से पहले आया हूं। अतः पहले अपनी बात कहूं, यह मेरा अधिकार है।

"निस्संदेह राजन् ! निस्संदेह !" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था। एक चपल दृष्टि अर्जुन की ओर उठाई—लगा था कि अर्जुन का चेहरा मुरझाया हुआ है। बोले थे, "पहले आने के कारण अधिकार तो तुम्हारा ही है कुरुराज ! पर नीति है कि छोटों की इच्छा सदा ही पहले पूरी की जाती है। अतः मेरे विचार में अर्जुन को तुम यह अवसर दोगे कि वह मुझसे वांछित प्राप्त कर लें ? अर्जुन तुमसे आयु में छोटे हैं, अतः उनकी इच्छा पहले।"

दुर्योधन कुछ कह सकें, इसके पहले ही श्रीकृष्ण पुनः बोल पड़े थे। कहा, "यों मैं तुम दोनों के लिए ही सहायता हेतु वचनबद्ध हूं, पर सहायता किस तरह की और कैसी चाहिए, यह तुम पर छोड़ता हूं। दो तरह सहायता दे सकता हूं···?" बात अधूरी छोड़कर कृष्णचन्द्र ने दोनों को ही देखा था। वे परस्पर देखते हुए फिर श्रीकृष्ण का चेहरा देखने लगे थे। दृष्टि में प्रश्न—किस तरह की सहायता देना चाहेंगे वह ?

"एक ओर मेरे पास एक करोड़ संख्या वाली नारायणी सेना है और दूसरी ओर मैं अकेला हूं। यहां यह भी स्पष्ट कर दूं कि युद्ध में मैं निहत्था रहूंगा। हथियार न उठाने के लिए मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूं। अब बोलो, तुम लोग इसमें से क्या चाहोगे ?"

दुर्योधन विचार में पड़ गया था, पर अर्जुन यांत्रिक भाव से बोल गए थे, "हमें केवल आपकी आवश्यकता है माधव ! केवल आप ! हम संतुष्ट होंगे !"

दुर्योधन ने इस तरह देखा था अर्जुन को, जैसे कह देना चाहते हों, "कितने मूर्ख हो तुम !" फिर श्रीकृष्ण से कहा था, "तब निर्णय हो गया द्वारकापति ! नारायणी सेना मुझे दे दें !"

"जैसी तुम्हारी इच्छा कौरवेन्द्र !" श्रीकृष्ण बोले थे, "तुम मेरी विशाल सेना अपने साथ ले जा सकते हो !"

दुर्योधन पल-भर की देर न करके प्रसन्नमन उठ गया था। अभिवादन किया, और यह कहकर विदा हो गया, "मैं महाराज बलभद्र से भेंट करता हूं माधव !" कोई कुछ नहीं बोला था।

अर्जुन उसी तरह शांत बैठे थे। दृष्टि में वही मुग्धभाव···टकटकी बांधे हुए श्रीकृष्ण को देख रहे थे। सहसा पूछ लिया था कृष्ण ने, "मैं चकित हूं कुन्तीपुत्र ! युद्ध से विमुख हूं, यह जानते हुए भी तुमने मुझे क्यों मांगा ?"

अर्जुन ने सरल हंसी में हंसते हुए संतुष्ट भाव से उत्तर दिया था, "जानता हूं, देव ! जिधर आप होंगे, जय उधर ही होगी ! आप मेरे सारथी बनें, यह मेरी इच्छा है। समय-समय पर आपके परामर्श से ही मुझे शुभाशुभ का विचार करने में सुविधा होगी और आपकी सम्मति से ही मैं

विजय प्राप्त करूंगा !"

हँस दिए थे कृष्ण। बहुत घुली-घुली हँसी में।

अब भी लगता है, जैसे श्रीकृष्ण को मांगकर अर्जुन ने साक्षात् विजय को ही मांग लिया था। असल में श्रीकृष्ण को नहीं मांगा था उन्होंने, उन्होंने मांगा था—अपना पूर्णत्व !

इस पूर्णत्व की शक्ति से ही अर्जुन सम्पन्न हुए हैं। उनकी वीरता सीमाहीन हुई है, व्यक्तित्व सुगंधि की तरह बिखरा है। कभी-कभी लगता है कि श्रीकृष्ण न होते तो संभवत: अपने गुणों का उस तरह व्यापक रूप में उपयोग ही न कर सके होते अर्जुन ! समय-समय पर मन-आत्म में जनमने वाली भ्रांतियों और भटकावों को श्रीकृष्ण ने ही दिशा दी है…श्रीकृष्ण ने ही पल-पल उन्हें सावधान किया है कि गुण प्राप्त कर लेना और उसका सदुपयोग करना दोनों ही विलक्षण स्थितियां हैं।

सच ही तो गुण पाना एक बात है, उसे विकसित करना दूसरी बात और सबसे कठिन स्थिति है गुण के दंभ से बचना।

लगता है इस विचार के साथ ही सैकड़ों वे क्षण याद आने लगते हैं, जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन के गुण को दोष बनते-बनते रोक लिया था। केवल अर्जुन ही क्यों सभी पांडवों को सफलता के मद में चूर होने से संभाला था।

स्मृति में अनायास ही कुरुक्षेत्र युद्ध के वे अंतिम दिन उभरने लगे हैं, जब भीम के हाथों दुर्योधन मरणासन्न स्थिति में जा पहुंचे थे। वे सभी दुर्योधन के उस अंत समय पर यहां-वहां जुट आए थे।

भीम ने दर्पोक्ति की थी, "अरे नीच ! तुझे और तेरे दुष्ट साथियों को हम पांडवों ने अपने पराक्रम से हत किया है।"

युद्धांत के वे क्षण ! अपूर्व हर्षोल्लास से भरे हुए थे सब। स्वयं अर्जुन को लगता था कि उन्होंने जीवन का श्रेष्ठतम प्राप्त कर लिया है। कैसे न लगता ? द्रोणाचार्य जैसे समय के सबसे बड़े युद्धाचार्य को परास्त किया उन्होंने। कर्ण की सत्ता मिटा दी थी संसार से ! जयद्रथ को हत कर अनेक

वीरों को स्तब्ध कर छोड़ा था अर्जुन ने ! गांडीव की टंकार साक्षात मृत्यु का संदेश बनकर रह गई थी संसार के लिए। ऐसे अर्जुन !

गर्व से सिर पर्वतों की चोटियां लांघता अनुभव होता था। अपनी ही श्वासों में आंधी की गति अनुभव होती। अपने शब्दों में संसार की सारी अधिकार शक्ति समाई लगती। अब अर्जुन से बड़ा कौन बचा इस पृथ्वी पर ? अर्जुन श्रेष्ठ ही नहीं, सर्वश्रेष्ठ थे।

पता ही नहीं पड़ा था कि सफलता किस क्षण दंभ बन गई ? यह भी ज्ञात नहीं कि इस दंभ ने किस पल कृष्ण से मिले सांख्य योग, संन्यास योग, ध्यान योग के सम्पूर्ण ज्ञान को बिसरा दिया। शक्ति और सत्ता की प्राप्ति ने सफलता के बोझ से अपने व्यक्तित्व को ही कुहासे में ढक लिया था। लगता था कि मनुष्य नहीं रहे हैं—मनुष्य से इतर अलौकिक हो गए हैं अर्जुन ! यह अलौकिकता उस क्षण अधिक ही अनुभव हुई थी, जिस क्षण भीम ने लहूलुहान पड़े दुर्योधन से वह सब कहा।

दुर्योधन तिरस्कार से हंसा था। कितनी थूकती हुई हंसी। उससे भी अधिक विद्रूप भाव से उसने देखा था श्रीकृष्ण को। आंखें बोलती हुईं। लहू से भीगा माथा भी सूर्य की तरह दमदमाता हुआ। उपहास करती दृष्टि ! बोला था, "निर्लज्ज ! अभिमानी ! तू और तेरा यह छली मित्र कृष्ण जानते हैं कि तुम पांडवों में से कोई भी ऐसा न था, जो महान कौरव सेना के धुरंधर रथियों, महारथियों के सामने टिक सके ! व्यर्थ दंभ मत कर ! विश्वासघात और छल से जुड़कर वीरत्व अपमानित होता है – प्रतिष्ठित नहीं ! तुम पांडवों की सफलता ही घोर असफलता है !"

भीम आगे कोई दंभोक्ति कर सकें, इसके पहले ही श्रीकृष्ण ने हौले से बांह थाम ली थी उनकी। कहा था, "शांत हो, कुन्ती सुत ! कटु वचनों से शत्रु को आहत करना उचित नहीं है।"

"किंतु माधव ! यह अभिमानी आज भी दंभोक्तियां कर रहा है।" चिड़चिड़ा उठे थे भीम।

कृष्ण बोले थे, "कौरवश्रेष्ठ ! दुर्योधन ने दंभोक्ति नहीं की है, महावीर ! उन्होंने सच ही कहा है। महाराज दुर्योधन गदायुद्ध में सिद्ध थे। उनकी फुर्ती से पार पाना भी सहज संभव न था। फिर यह तुम्हें सदा

स्मरण रखना चाहिए कि भीष्म, कर्ण, द्रोण आदि वीरों से न्याय-युद्ध करके पांडव पक्ष कभी भी विजय नहीं पा सकता था।"[1]

सहम गए थे पांडव। एक पल के लिए भीम का सफलता से जगमगाता चेहरा भी धुंधला गया था, किंतु कृष्ण ने सत्योद्घाटन करके सहसा पांडवों के विजय-दंभ को चकनाचूर कर डाला था, बोले थे, "यह सच हैं कि कौरव पक्ष के महानतम और अजेय योद्धा इस युद्ध में हत हुए हैं, किंतु इसका शोक मत करो। राजनीति में सफलता और शुभ के लिए अधर्मपूर्वक अपने से बली और सक्षम शत्रु का नाश करना स्वीकृति नियम है। सदा ऐसा होता आया है और सदा ऐसा होता रहेगा!"

सत्योद्घाटन की कड़वाहट ने तिलमिला दिया था भीम को! केवल भीम को ही क्यों, पास ही खड़े अर्जुन भी सहम गए थे; किंतु श्रीकृष्ण से तर्कातर्क करने का न तो साहस हुआ था उन्हें, न ही कर सके···श्रीकृष्ण की ही शिक्षा ने शब्दों को होंठों पर जमा दिया था···याद आया था—श्रीकृष्ण का कभी अपने को ही लेकर कहा गया सत्य, "बिना विवेक की कसौटी पर कसे हुए न मैं किसी से प्रश्न करता हूं, न उत्तर देता हूं, न कार्य करता हूं—इसी कारण मैं अन्य से अप्रभावित रहता हूं।"

और अप्रभावित ही रहना होगा अर्जुन को! इस अप्रभावित होने की साधना करते हुए सहसा उन्हें लगा था कि श्रीकृष्ण कुछ समय पूर्व जो कुछ बोले, वह असत्य नहीं है, सच ही तो। आचार्य द्रोण, प्रतापी भीष्म, दुर्जय

---

१. महाभारत के (शल्य पर्व) के अध्याय ६१ में श्रीकृष्ण ने स्वीकार किया है और पांडवों से स्पष्टतः कहा भी है कि कौरवपक्ष के अनेक महारथियों को मार पाना न्याय-युद्ध में पांडवों के लिए कदापि संभव न था। यहां उन्होंने कहा है कि युक्तिपूर्वक और उपाय से ही उन्हें उन महारथियों को समाप्त करवाया।
उपरोक्त अध्याय में ही श्लोक-क्रम ६० से ६५ के बीच वह कहते हैं—"···तुम लोग यह सोचकर शोक मत करो कि भीमसेन ने अधर्मपूर्वक दुर्योधन से युद्ध करके उसे मारा है। क्योंकि : इससे पहले अनेक महापुरुषों ने छल, कौशल आदि से अपने शत्रुओं का नाश किया है। शत्रुओं की संख्या अधिक होने पर उन्हें कूटयुद्ध से मारना राजनीति का नियम।"

कर्ण और सिन्धुवीर जयद्रथ कोई भी तो ऐसा नाम याद नहीं आता, जिसे

विना युक्ति के हत किया जा सका हो !

लगा था कि दंभ का कोहरा अनायास ही फट गया है और उसके भीतर से एक दिव्य चमक उभर आई है। सत्य की तरह दैदीप्यमान और अमर-ज्योति किरण !

यह ज्योतिकिरण ही पल में अर्जुन वन जाती है, पल में गांडीव और पल में पराक्रम ! इस ज्योति से जुड़कर जितना स्पष्ट दर्शन स्वयं का होता है, उतना ही दूसरों का।!

श्रीकृष्ण ! अनित्य ! अनंत ! सत्य और केवल सत्यानुभूति !

अनायास ही होंठों से स्तुति शब्द निकल पड़े थे, "प्रभु ! तुम निर्गुण हो ! अशरीरी ! तुम्हें अर्जुन का प्रणाम !"

लगा कि मन वादल की तरह हलका हो गया है। उन वेगवती हवाओं से जुड़ा हुआ, जिन्हें तीव्रता से काटते हुए अर्जुन का रथ आगे और आगे वढ़ा जा रहा था। अश्वमेधयज्ञ का जय-संदेश लिए हुए।

यह जय-संदेश और संदेश-यात्रा चलती रही थी। अंग, बंग, पुण्ड्र, कौशल, काशी, चेदि[1] एक के बाद एक राज्यों की ओर। किसी वार अर्जुन को धनुष उठाना पड़ा था, किसी वार स्वयं राजाओं ने उनके धनुष की अगवानी और पूजा करके संदेश स्वीकार किया था।

इस यात्रा के प्रतिपल श्रीकृष्ण को स्मरण करते रहे हैं अर्जुन ! कभी-

---

1. अंग—वर्तमान भागलपुर और मुंगेर जिले का अधिकतर हिस्सा।
बंग—आधुनिक बंगाल।
पुण्ड्र—कोसी नदी के पूर्व दिशा में पूर्णिया का कुछ भाग, वर्तमान मालदा जिला, राजशाही और दीनाजपुर का कुछ क्षेत्र—उस समय पुण्ड्र देश कहलाता था।
कौशल—वर्तमान सरयू के दोनों तीरों का प्रदेश।
काशी—वर्तमान वाराणसी।
चेदि—वर्तमान मध्यप्रदेश स्थित चन्देरी का मूल नाम चेदि है। चेदि के अन्तर्गत मौजूदा ग्वालियर तथा बुन्देलखंड, बघेलखंड के कुछ हिस्सों के साथ-साथ उत्तर प्रदेश के भी काफी हिस्से आ जाते थे।

कभी लगता है जैसे श्रीकृष्ण के स्मरण से शक्ति प्राप्त कर लेते हैं अर्जुन ! और केवल शक्ति ही क्यों ? सत्य प्राप्ति करते हैं।

श्रीकृष्ण और सत्य—दोनों भेदहीन ! उस समय तक यह रहस्य, रहस्य, ही रहा था जब तक कि वह बार-बार उनसे मिले-जुले नहीं थे। जैसे-जैसे यह मेल-जोल बढ़ा था, वैसे-वैसे अर्जुन अनुभव करने लगे थे कि श्रीकृष्ण केवल वीरत्व नहीं, योग, ज्ञान, सत्य, सनातन और सम्पूर्ण हैं। जीवन के आरपार हर रहस्य के उद्घाटक, और फिर अर्जुन ने अनुभव किया था —जैसे श्रीकृष्ण ही हैं, जो स्वयं जन्म हैं, स्वयं नाश।

और अनायास ही अर्जुन का दृष्टि में श्रीकृष्ण को लेकर एक बदलाव आने लगा था। लगता था मित्रभाव से गुरु को पाया है उन्होंने। यह बदलाव उन्होंने स्वयं में ही नहीं देखा था। धीमे-धीमे कुछ इसी तरह के परिवर्तन को वे क्रमश: भीष्म, विदुर, युधिष्ठिर और कर्ण में भी अनुभव करने लगे थे। क्या श्रीकृष्ण को उन्होंने भी समझ लिया होगा ? अर्जुन के मन में उस समय एक प्रश्न कौंधा था, फिर यह कौंध अनुभव बनने लगी थी। श्रीकृष्ण, अर्जुन के हमउम्र, अर्जुन के सखा !

विदुर, भीष्म, युधिष्ठिर की दृष्टि में उन्हीं की तरह छोटे। पर अर्जुन ने पाया था कि श्रीकृष्ण को लेकर हर वृद्ध दृष्टि में भी आदर होता है, श्रद्धा होती है, अभ्यर्थना का भाव होता है !

इसीलिए न कि श्रीकृष्ण ईश्वर हैं ? शरीरधारी होकर भी अशरीरी। एक होकर भी अनेक।

किसी क्षण सत्य दर्शन कराने के लिए सूर्य की तरह जनमते हुए और किसी क्षण सत्य के लिए सूर्य को बदलियां बनकर ग्रसते हुए ! किसी पल मंद समीर की तरह सुगंधित और किसी क्षण दुर्दांत युद्ध में सड़ते गलते दुर्गंध युक्त पृथ्वी की तरह। वे स्वयं भय हैं, स्वयं भीति। स्वयं चेतन, स्वयं अचेतन !

कितनी ही बार स्वयं से श्रीकृष्ण को लेकर तर्कातर्क कर उठते थे अर्जुन। नहीं ! वे भी अर्जुन की तरह साधारण मनुष्य हैं। आयुध से घायल हो सकते हैं वे और संकुल युद्ध में चिन्तित हो सकते हैं वे !

पर श्रीकृष्ण हर घटना से जिस तरह घटित बनकर जुड़ते, उससे पल-

भर में अर्जुन का विचार दहल जाया करता । न न, गलत सोचा था अर्जुन ने ! श्रीकृष्ण मनुष्य नहीं हैं !

कितनी ही घटनाएं तो हैं—सिलसिलेवार । श्रीकृष्ण को लेकर अर्जुन का स्मृति-कोष भरा हुआ है ।

उन्हीं में से जिस घटना ने अर्जुन को अत्यधिक मथा है—वह बहुत पुरानी नहीं । चित्रवत् अर्जुन के मस्तिष्क-पटल पर अंकित है !

कुरुक्षेत्र युद्ध से जुड़कर भी अनजुड़ी कड़ी है वह घटना ! सत्य और संवेदन का साक्षात् ! आत्मशक्ति का चमत्कार ! अनंत के दर्शन की कभी विस्मृत न की जा सकने वाली घटना !

अश्वत्थामा ने ब्रह्म शिर-अस्त्र चला दिया था । अमोघ, दिव्यास्त्र ! सब ओर हाहाकार मच गया था । पांडव - विजयश्री पाकर भी जैसे पराजित हो गए थे । ब्रह्मशिर-अस्त्र की भयावह शक्ति ने समूची प्रकृति को ही उलट-पुलट डाला था ।

लगता है कि अब भी सब कुछ अर्जुन की दृष्टि के सामने है । रथ की वल्गा थामे हुए सहसा स्मरण मात्र ने अर्जुन को दहला दिया । हाथ कांप गए ! वह क्षण !

रथ दौड़ा जा रहा था । पीछे-पीछे सेनाएं; किन्तु अर्जुन इस वर्तमान से अलग होकर विगत की उस घटना से जा जुड़े ।

अधिक नहीं—कुल माह पूर्व की ही बात है···स्मरण के साथ ही अर्जुन को लगा था कि वे वीते माह, बीतकर भी वीत नहीं सके हैं । कुरुक्षेत्र के युद्ध में प्रयुक्त हुए भयावह अस्त्रों के प्रभाव से अब भी जड़-चेतन प्रभावित है । हर मौसम बदलता हुआ, हर भोर अलग रंग बिखेरती हुई, हर जन्म संदिग्ध और हर नाश निश्चित ! हर अविश्वसनीय परिवर्तन, विश्वसनीय !

उसी दौर में वह भयावह अस्त्र ! अर्जुन को लगा था कि रथ सहसा किसी चट्टान से टकराकर उछल पड़ा है···

जिस क्षण अश्वत्थामा ने ब्रह्म शिर-अस्त्र[1] चलाया, उस क्षण सभी कुछ इसी तरह उलट-पुलट होने लगा था ! उस क्षण किसी को भी कल्पना नहीं थी कि अश्वत्थामा उस निशेध-अस्त्र का[2] उपयोग कर बैठेंगे ! केवल कृष्ण ही थे, जिन्होंने युधिष्ठिर से यह आशंका व्यक्त की थी। कहा था, "उसे शीघ्र खोज लेना आवश्यक है धर्मराज ! मैं जानता हूं कि अश्वत्थामा क्रोधी ही नहीं, क्रूर भी है। इस क्षण वह ब्रह्मशिर अस्त्र चलाने में भी संकोच नहीं करेगा···और भीम जो उनके वध का विचार करके गए हैं—उससे बच नहीं सकेंगे !"

चिन्तित अर्जुन और युधिष्ठिर तुरन्त रथारूढ़ होकर उस दिशा में चल पड़े थे, जिस ओर अश्वत्थामा और उसके बाद भीम चले गए थे। इसके पूर्व कि अश्वत्थामा भीम का वध कर डालें, उन्हें पहुंच जाना था। पहुंच भी गए थे; किन्तु अश्वत्थामा ने समझा था कि अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर आदि उसे समाप्त करने आ रहे हैं। भयातुर उसने ब्रह्मशिर-अस्त्र का संधान प्रारम्भ किया था···तीव्रगति से श्रीकृष्ण रथ दौड़ाने लगे थे—किसी तरह उस विनाशकारी अस्त्रचालन के पूर्व अश्वत्थामा को काबू किया जाना आवश्यक था; किन्तु देर हो गई थी !

अश्वत्थामा इस बीच उस अस्त्र का संधान कर चुका था। रथ आगे बढ़ सके, इसके पूर्व ही भयावह गर्जना के साथ ब्रह्मशिर-अस्त्र की झुलसा

---

१. ब्रह्मशिर-अस्त्र के विनाशकारी प्रभावों को लेकर महाभारत के सौप्तिक पर्व में अध्याय १३ के अन्तर्गत श्लोक-क्रम २० से २२ के अन्तर्गत लिखा गया है—"···एक सेंठा उखाड़कर उसमें उस दिव्यास्त्र को लगाकर 'कोई भी पांडव न बचे' यह दारुण वचन कहते हुए अश्वत्थामा ने उसे छोड़ दिया ! उस सेंठे से घोर अग्नि प्रकट हुई। जान पड़ने लगा कि यमराज के समान, वह अग्नि तीनों लोकों को जलाकर भस्म कर देगी !"

२. संहारक अस्त्रों की भयावहता को लेकर वर्तमान समय की तरह उस समय भी उनका उपयोग न करने के निर्णय लिए गए थे, यह संकेत नारद और वेदव्यास द्वारा यह कहने से सिद्ध होता है कि—" 'पहले जो बड़े-बड़े अस्त्रों के जानने वाले महारथी हो गए हैं, उन्होंने कभी यह अस्त्र मनुष्यों पर नहीं चलाया। हे वीरो ! तुमने यह क्या अनर्थ कर डाला !" (सौप्तिक पर्व अध्याय—१४, श्लोक-क्रम १४ से १६)।

डालने वाली अग्नि प्रकट हुई। अनेक वृक्ष इस अग्नि से झुलस गए। देर तक
धरती पर प्रलयंकारी विस्फोट होते रहे। धरती कांप रही थी। प्रकाश इतना तीव्र हुआ था कि पुतलियां सिर्फ धुंधलाहट देख पाने में समर्थ रह गई थीं! श्रीकृष्ण सहसा ही चीख पड़े थे, "नाश! भयावह नाश!"

अकुलाकर अर्जुन ने पूछा था, "अब? अब क्या होगा यशोदानंदन!"

श्रीकृष्ण ने रथ को अस्त्र की विनाशकारी दिशा की ओर से मोड़ लिया था। उतावली में बोले थे, "केवल एक ही रास्ता शेष बचा है धनंजय! ब्रह्मशिर-अस्त्र को थामने का उपचार किया जा सकता है! इस समय केवल यही संभव है!"

अर्जुन ने जैसे-तैसे अपनी अकुलाहट सम्हाले रखी थी। संतुलन कायम करने का प्रयत्न करते हुए कहा था, "वह क्या कृष्ण!"

"आचार्य द्रोण ने जिस दिव्यास्त्र को तुम्हें दिया था, तुम उसका उपयोग भी जानते हो और उसका निशेध भी। इस समय अश्वत्थामा के इस संघातिक अस्त्र को केवल उसी से थामा जा सकता है। तुरन्त संधान करो!"

"किन्तु···?" व्यग्र हो गए थे अर्जुन। आचार्य के इस दिव्यास्त्र का उपयोग मनुष्य जाति के लिए ही नहीं, समूची प्रकृति के लिए कितना घातक हो सकता था—जानते थे। मन संकोच से अधिक भय ने ग्रस लिया था। अर्जुन यदि उसका संधान कर बैठे, तो चराचर नाश ही हो जाएगा।

पर श्रीकृष्ण ने अवसर नहीं दिया था। उसी तरह उतावली से कहा था, "यह सोच-विचार का समय नहीं है गांडीवधारी। इस समय तुम अपनी और अपने बन्धु-बान्धवों की रक्षा केवल उसी दिव्यास्त्र से कर सकते हो! चलाओ उसे!"

और श्रीकृष्ण का कथन? लगा था कि इसके आगे सोच-विचार की आवश्यकता नहीं है। अर्जुन ने दिव्यास्त्र संधान प्रारम्भ कर दिया था।

उस समय तक अश्वत्थामा का ब्रह्मशिर-अस्त्र पूरी तरह प्रभावशील

नहीं हो पाया था कि अर्जुन का दिव्यास्त्र उसे थामने के लिए छूट गया...[1]

एक वार पुनः चकाचौंध कर डालने वाली अग्नि प्रकट हुई। भीषण गर्जना करता हुआ वह भयानक अस्त्र सम्पूर्ण गति से ब्रह्मशिर के मार्ग की ओर वढ़ चला। धरती अधिक कांपने लगी थी। आकाश में भयानक विस्फोट होते जा रहे थे। इन विस्फोटों से बहुरंगी अग्नि भर प्रकट नहीं हो रही थी, अपितु बड़े-बड़े जलते हुए खंड जैसे धरती की ओर टूट-टूटकर गिर रहे थे। आकाश, वायु, वातावरण सभी कुछ झुलसने लगे थे। दूर, नगर-बस्तियों में अनेक मकान या तो ध्वस्त हो गए, या फिर टूट-फूट गए! बहुतेरी स्त्रियों का गर्भपात हो गया।

दोनों अस्त्रों की दिशा आमने-सामने थी। वे परस्पर टकराकर पृथ्वी को नष्ट करते दिखाई दे रहे थे! यह केवल आशंका न थी। निश्चित था।

हाहाकार मच गया था। अनेक तपस्वी, ऋषि-मुनि दोनों ही पक्षों की ओर दौड़ पड़े थे। सबकी एक ही गुहार थी, "इन संहारक अस्त्रों को थामों! किसी तरह इन्हें नष्ट करो! इनका पृथ्वी पर प्रभाव हो, इसके पूर्व ही इन्हें निष्प्रभावी बना दो!

नारद और वेदव्यास आ पहुंचे थे, फिर उन्होंने दोनों ही पक्षों से संपर्क साधा था।

तीव्रगति से रथ को दौड़ाते हुए अर्जुन उस स्मरण से इस समय भी

---

१. अश्वत्थामा के चलाए गए अस्त्र को रोकने के लिए, अपना बचाव करने के उद्देश्य से अर्जुन ने भी एक अस्त्र छोड़ा। इस अस्त्र का प्रभाव-वर्णन सौप्तिक पर्व में अध्याय १४ के अन्तर्गत, श्लोक-क्रम १ से १० के बीच इस प्रकार आया है—"अर्जुन के छोड़े अस्त्र ने सहसा प्रलय-काल की आग प्रकट कर दी! उधर अश्वत्थामा का अस्त्र भी बड़ी-बड़ी ज्वालाओं से जल उठा। चारों ओर तेज का मण्डल छा गया। उस समय आकाश में बार-बार धड़ाका सुनाई पड़ने लगा। हजारों तारे पृथ्वी पर टूट-टूटकर गिरने लगे। घोर शब्द होने लगे। पर्वत-वन-वृक्षों सहित धरती हिल उठी।

कांप-कांप उठते हैं। कैसी प्रलयंकारी स्थिति हो गई थी संसार की ! उससे कहीं अधिक युद्ध-शेष रहे जन-जीवन का त्राहिमाम् !

अर्जुन ने, जो स्वयं भी शस्त्र-संधान से काफी कुछ सहमे हुए थे, सकुचाकर कहा था नारद से, "देवर्षि ! आपकी आज्ञा और इच्छा सिर-माथे ! अपना अस्त्र थाम सकता हूं और थाम भी लूंगा किन्तु···।"

नारद ने वात सम्भाल ली थी, "अश्वत्थामा के ब्रह्मशिर[1] की वात कर रहे हो ना पार्थ ! आश्वस्त रहो। महर्षि वेदव्यास उसका क्रोधशमन कर किसी तरह उसे अपने अस्त्र को निष्फल करने के लिए तैयार कर लेंगे।"

"तव आपकी आज्ञा !" कहकर अर्जुन ने अपना अस्त्र लौटाकर दूसरी दिशा में मोड़ दिया था—समुद्र की ओर ! समुद्र की भी ऐसी दिशा

---

१. विशेष :

अश्वत्थामा ने जिस समय ब्रह्मशिर अस्त्र चलाया, उस समय सुभद्रा अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा सहित द्वारिका में थीं। महाभारत में अश्वमेध पर्व के ६१वें अध्याय में श्लोक-क्रम १ से ५ के बीच वह वर्णन है जबकि श्रीकृष्ण द्वारका पहुंचकर वसुदेव और परिवारजनों को अभिमन्यु के हत होने की घटना सुनाते हैं। इस समय महाभारतकार ने उपस्थित लोगों में सुभद्रा और उत्तरा को भी वतलाया है। गर्भवती उत्तरा के गर्भ पर अश्वत्थामा द्वारा चलाए गए ब्रह्मशिर अस्त्र का भयानक प्रभाव होगा—यह वर्णन सौप्तिक पर्व के १५वें अध्याय में श्लोक-क्रम ३० से ३५ के बीच आया है।

ब्रह्मशिर अस्त्र के प्रभाव और भयावह शक्ति को लेकर जो वर्णन वेदव्यास ने महाभारत में किया है, उसके अनुसार वह बहुत कुछ आधुनिक मिसाइल से मेल खाता है। जिस तरह मिसाइलों को चला देने के वाद उनकी दिशाओं में परिवर्तन किए जा सकते हैं, उसी तरह परस्पर वार्ता के वाद ब्रह्मशिर अस्त्र की दिशा अश्वत्थामा ने मोड़ी। यह दिशा संभवतः पश्चिमी समुद्र की ओर रही होगी। इस भयावह अस्त्र ने जिस क्षण समुद्र में समाधि ली होगी, उस क्षण उसके दूरगामी परिणाम मनुष्य जाति और प्रकृति पर हुए। द्वारका स्थित गर्भवती उत्तरा का गर्भ भी उस क्षेत्र की अन्य स्त्रियों की तरह इस अस्त्र के घातक प्रभाव से प्रभावित हुआ ! संभवतः गर्भपात की स्थिति वनी, जिसका उपचार अगले अध्यायों में (अश्वमेध पर्व) श्रीकृष्ण ने अपनी योगशक्ति से किया—वर्णित है।

—लेखक

में, जिस ओर पृथ्वी खंड प्रभावित न हो।

पर अश्वत्थामा तैयार न हुआ। वेदव्यास के बहुत समझाने, शुभा-शुभ, पाप-पुण्य और अहिंसा के तर्क देने पर भी वह देर तक जिद पकड़े रहा था, "देव ! कुरुराज दुर्योधन को छल से हत किया दुष्ट पांडवों ने ! इसी तरह मेरे पूज्य पिता और अपने ही गुरु द्रोणाचार्य को धोखा देकर मारा गया ! ऐसे दुष्ट पांडवों पर मुझे क्रोध न आए, यह कैसे संभव है ?"

"मैं तुम्हारी पीड़ा जानता हूं, पुत्र !" वेदव्यास ने क्रोधित वीर को शांत करने की चेष्टा की थी, "किंतु उस पीड़ा के वश में होकर ऐसा अनर्थ मत करो कि मानव जाति ही नष्ट हो जाए ! तुम महान युद्धाचार्य की संतान हो, ब्राह्मण हो, तुम्हें तो प्राणीमात्र पर दया करना चाहिए अश्वत्थामा ! शांत हो और अपने इस दुष्कर अस्त्र को वापस लौटा लो। कहीं ऐसा न हो कि तर्कातर्क में वह समय निकल जाए, जिसका प्रतिक्षण पृथ्वी की शांति के लिए बहुमूल्य है।

वेदव्यास के साथ अन्य लोग भी थे। सभी घबराए और डरे हुए। ब्रह्मशिर अस्त्र तीव्रगति से विस्फोट करता हुआ क्रमशः उग्र और उग्र होता जा रहा था ! सभी जानते थे कि इसके प्रहार के साथ ही पृथ्वी से जड़-चेतन नष्ट हो जाएंगे !

अश्वत्थामा ने एक पल के लिए वृद्ध ऋषियों और अहिंसक ब्राह्मणों की ओर देखा था। लगा जैसे उसके अस्त्र संचालन के कारण वे निर्दोष ही मारे जा रहे हैं। सहसा वह पश्चात्ताप से भर उठा था। भर्राई आवाज में बोला था, "मुझसे बहुत बड़ा दोष हुआ ऋषिवर ! पांडवोंसे जीवनरक्षा में भयाक्रांत होकर इस दुर्लभ अस्त्र को चला बैठा, पर अब इस पाप से मुक्ति की राह मुझे नहीं सूझ रही है। समझ नहीं पा रहा हूं कि क्या करूं ?"

अश्वत्थामा की मुद्रा, थरथराता स्वर और सहमी हुई दृष्टि सभी कुछ प्रकट कर रहे थे कि वह संभवतः अस्त्र संचालन के बाद उसकी वापसी या उसे नष्ट करने की क्रिया नहीं जानता। घबराहट अधिक ही बढ़ गई थी; किंतु अब भी कुछ नहीं हुआ था।

व्यास पुनः समझाने लगे थे उसे, "अब भी बहुत कुछ वश में है वीर-

वर ! तुम उस ब्रह्मशिर अस्त्र को लौटा लो !" उन्होंने स्वर में मिठास भरे हुए जैसे अनुनय की थी। महान् युद्धज्ञ के पुत्र को विनाशकारी अस्त्रों के बारे में बहुत कुछ जानकारियां थीं। उससे सभी भयभीत थे। किसी तरह उसे शांत करके ब्रह्मास्त्र लौटवाया सकें या उसका दिशा परिवर्तन करवा सकें, तभी जीव-जगत को बचा सकेंगे। इसके अतिरिक्त और कोई उपचार नहीं सूझ रहा था।

अश्वत्थामा ने कह दिया था, "मैं इस अस्त्र को नहीं लौटा सकूंगा, पूज्य ! मुझे क्षमा करें !"

स्पष्ट था कि अश्वत्थामा ब्रह्मशिर अस्त्र के संचालन की क्रिया जानता था, उसके दिशा परिवर्तन या वापसी की नहीं !

व्यग्र होकर सभी एक-दूसरे को देखने लगे थे। मृत्युभय ने सबके चेहरों पर कालिख पोत दी थी।

सभी ओर समाचार बिखरा। समाचार के साथ-साथ भय। अश्वत्थामा का अस्त्र तीव्रगति से अब भी अपने निर्दिष्ट की ओर चला जा रहा था। कृष्ण भी चिंतित हो गए थे। पांडवों के चेहरे सूखे हुए। अब क्या होगा ?

वेदव्यास उस समय भी उसे शांत करने में लगे हुए थे। इस तरह जैसे किसी युक्ति को उसी के माध्यम से खोज लेना चाहते हों। कहा था, "देखो, द्रौणसुत ! पृथ्वी के शुभार्थ अर्जुन ने तुम्हारे अस्त्र को नष्ट कर देने वाले अपने दिव्यास्त्र को वापस कर लिया है। संभवतः यह विचार-कर निजत्व से परे एक विशाल संसार है और उसका शुभ ही मनुष्यता है, तुम्हारा अस्त्र केवल पांडवों का ही संहार नहीं करेगा, अपितु समूची पृथ्वी का, समूचे देश का नाश कर देगा। तुम स्वयं भी उसके क्रूर प्रभाव से बच नहीं सकोगे ! अतः उचित यही होगा कि किसी तरह अपने अस्त्र को थाम लो।"

अश्वत्थामा ने पुनः कह दिया था, "मैं जानता हूं मुनिवर ! यह भी जानता हूं कि अर्जुन ने इस समय बहुत विवेक से काम लिया है किंतु मैं

ब्रह्मशिर को थामने की कला नहीं जानता। अधिक-से-अधिक यही कर सकता हूं कि इसकी दिशा में परिवर्तन की चेष्टा करूं। यह पश्चिम दिशा की ओर जा रहा है ! यह उसी ओर समुद्र में गिरा दूंगा; किंतु इसके प्रभाव से समुद्रतटवर्ती क्षेत्र नहीं बच सकेंगे। मुझे ज्ञात है कि उत्तरा इन दिनों गर्भवती होकर द्वारका में है। यह अस्त्र उसके गर्भ पर भी घोर अनर्थकारी प्रभाव छोड़ेगा।"

सबने समझ लिया था कि इसके अतिरिक्त कोई राह नहीं। यदि उत्तरा के गर्भ का मूल्य चुकाकर भी पृथ्वी के एक विशाल भूक्षेत्र और जन जीवन को बचाया जा सके, तो बचाना ही होगा। व्यास ने कहा था, "तब वही करो पुत्र ! इस समय वही श्रेष्ठ है !"

अश्वत्थामा ने बहुत प्रयत्न से दिशा परिवर्तन किया था। निराशा और क्रोध से ग्रस्त अश्वत्थामा पांडवपक्ष के हाथ समर्पित हो गया था।

समाचार पांडव-पक्ष में पहुंचा। उत्तरा के गर्भ से ही पांडवों के वंश चलने की आशा थी, सो वह भी डूब गई ! कुंठित हंसी के साथ अश्वत्थामा बोला था, "जिसकी तुम रक्षा करना चाहते हो कृष्ण ! वह गर्भ इस अस्त्र से बच नहीं सकेगा !"[1]

स्त्रियों के रोने-धोने और पांडवों के मुरझाए चेहरों की ओर देखकर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था, "तुमने अपने दुष्कृत्य में कोई कमी नहीं छोड़ी

---

१. श्रीकृष्ण द्वारा उत्तरा के गर्भ से मृत पैदा हुए परीक्षित को जिलाए जाने की घटना को लेकर महाभारत के सौप्तिक पर्व के निम्न अध्यायों व नीचे लिखे जा रहे श्लोकों में इस तरह वर्णन आया है—
"जिसकी तुम रक्षा करना चाहते हो—वह गर्भ मरने से नहीं बच सकता !" (१६वें अध्याय में श्लोक-क्रम १ से ५ के बीच अश्वत्थामा द्वारा श्रीकृष्ण से कथन) इसी अध्याय में श्लोक-क्रम ५ से १० के बीच श्रीकृष्ण का यह उत्तर भी है—"गर्भ का वह बालक मरा हुआ ही पैदा होगा, किन्तु फिर वह जीकर बहुत दिनों तक राज्य करेगा ! अस्त्र के तेज से जले हुए बालक को मैं जिला दूंगा !"

है ब्राह्मणपुत्र ! किंतु मैं पांडवों के वंश की रक्षा करूंगा !"

अश्वत्थामा ने उपहास करती हुई दृष्टि से देखा था यशोदानंदन को। जैसे कहा हो, "इन डूबे हुए पांडवों को कहां तक उबार सकोगे कृष्णचंद्र।" घृणा और उपेक्षा के साथ बोल पड़ा था, "तुम असंभव को संभव करने की दुश्चेष्टा कर रहे हो केशव ! मैंने जो कुछ कहा है, वह असत्य नहीं हो सकता। ब्रह्मशिर के कारण अवश्य ही उत्तरा के गर्भ में उस अंश की मृत्यु हो जाएगी !" उसकी आंखें आग की तरह ही जल रही थीं। इस जलन में प्रतिशोध की ऐसी भावना भरी थी, जिसकी चिंगारियों ने पांडव-पक्ष के हर वीर का चेहरा ही नहीं समूचा विश्वास राख कर डाला था। केवल अर्जुन ही थे, जो बहुत विश्वास-भरी और आशांवित दृष्टि से श्रीकृष्ण को देखे जा रहे थे। लगता था, जैसे प्रार्थना कर रहे हैं, "बोलो, सर्वव्यापी ! कुछ तो कहो !" यही कातर दृष्टि घूमकर ऋषि-मुनियों की ओर मुड़ जाती। दृष्टि में होती प्रार्थना, "देव ! आप लोगों के कहने से मैंने अपना दिव्यास्त्र लौटा करप्राणीमात्र की रक्षा की थी; किंतु इस नीच ने हमारा वंशनाश करने का क्रूर निश्चय नहीं छोड़ा है !" किंतु अब बौखलाहट और बेबसी के सिवा कुछ भी नहीं रह गया था अर्जुन के हाथ। ब्रह्मशिर अस्त्र निकल चुका था और अब उसके संहारक परिणामों से कोई नहीं बच सकता था !

श्रीकृष्ण कभी उत्तेजित नहीं होते थे। होते भी तो उनके चेहरे या मुद्रा से पहचान पाना कठिन होता था। इस समय भी अडिग बैठे हुए थे। लगता था कि उनकी दृष्टि में ज्योति की असंख्य किरणें फूट पड़ी हैं। यह ज्योति धाराएं ही पांडवों की आशा और विश्वास ! श्रीकृष्ण ने कहा था, "जानता हूं अश्वत्थामा कि तुम्हारा चलाया हुआ दिव्यास्त्र निष्फल नहीं होगा; पर तुम संभवतः यह नहीं जानते कि नाश से निर्माण सदा ही शक्तिशाली रहा है। मृत्यु जीवन का सत्य है; किंतु जीवन असत्य नहीं ! अतः तुम्हारा प्रयास सफल होकर भी अन्त में निष्फल ही होगा।"

अश्वत्थामा के चेहरे पर वही कटुतापूर्ण मुसकराहट थी ! ऐसा घिनौना संतोष जो नरभक्षी पशुओं के चेहरे पर उभरता है।

पांडव पक्ष को लगा था कि जय सहसा पराजय में बदल गई है ! जिस सफलता के सुख से लदे हुए थे वह अनायास ही तिरोहित हो गया था। उसकी जगह उभर आया था एक ऐसा क्लेष जिसको झेल पाना असंभव !

किनके लिए लड़ा था यह युद्ध ? और किसलिए यह विजयश्री प्राप्त की ? किसलिए धर्माधर्म का भेद करना भूल गए ? किस कारण आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म और बड़े भाई कर्ण को हत करने का घोर पातक किया !

अर्जुन को लगा था कि अपने ही भीतर लहूलुहान हो उठे हैं। इस युद्ध में सब कुछ खोकर सब कुछ पाने का मूर्खतापूर्ण दंभ अब अपने को ही विक्षिप्त बनाए डाल रहा है। कैसी पीड़ा ?

लगा था कि जिस हाथ से गांडीव उठाते हैं और जिस हाथ से उस पर बाण चढ़ाते हैं—वे दोनों ही बांहें सहसा टूटकर झूल गई हैं। एक बांह तो उसी समय झूल गई थी, जिस क्षण अभिमन्यु वध का समाचार सुना था उन्होंने और शेष रही यह दूसरी बांह ? अब अभिमन्यु का अंश भी नष्ट हुआ ! श्रीकृष्ण के शब्द उस समय भी कानों में गूंज रहे थे—अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र की संहारलीला को स्वीकार कर लेने वाले शब्द, "···तुम्हारा चलाया हुआ दिव्यास्त्र निष्फल नहीं होगा !"

इसका स्पष्ट अर्थ था कि अभिमन्यु का अंश उत्तरा के गर्भ से मृत जनमेगा ! या हो सकता है कि उत्तरा के प्राण भी ले बैठे ! आंखें छलक आई थीं—झुककर कृष्ण पर ही बौखला पड़ने को मन हुआ था, "तुम तो कहते थे शंख चक्रधारी, कि सब कुछ ठीक हो जाएगा ! पांडव-जय होगी। जिधर धर्म होगा, जय उधर ही होगी ! यह कैसी जय है ? भला निर्वंश होकर भी विजय सुख अनुभव हो सकता है ?"

फट पड़े, इसके पहले ही श्रीकृष्ण के शब्द कानों में पड़े थे। सामने बैठे हारकर भी जीते हुए का दंभ ओढ़े अश्वत्थामा से कहा था उन्होंने, "उत्तरा के गर्भ से मृत बालक ही जनमेगा अश्वत्थामा; किन्तु वह फिर जी उठेगा ! अपनी नीचता के बावजूद तुम देखोगे कि अस्त्र के तेज से जलकर नष्ट हो चुके उस बालक को मैं जिला दूंगा ! मेरी तपस्या और शक्ति का

वह चमत्कार तुम अवश्य ही देखना !

अर्जुन ने सुना—सभी ने सुना होगा। किस पर क्या प्रतिक्रिया हुई होगी—यह देखने विचारने का समय नहीं मिला था अर्जुन को। केवल अपनी स्थिति याद है। श्रीकृष्ण के शब्दों को सुनकर सहसा ही तने हुए शरीर में सहसा ढीलापन आ गया था। ऐसे जैसे भयावह पीड़ा से मुक्ति पाकर सहसा आदमी शिथिल हो जाए। अर्जुन जिस जगह खड़े थे, उसी जगह बैठ रहे थे। अपने ही भीतर सुलगी अग्नि को सहसा उन्होंने शीतल होते अनुभव किया था, चंदन की तरह शीतल !

श्रीकृष्ण ! विश्वात्मा श्रीकृष्ण ! सहसा ही होंठ बुदबुदा उठे हैं। अश्वमेधयज्ञ के माध्यम से सर्वजय की दुन्दुभी बजाते चले जा रहे अर्जुन अनायास ही थकान से हलके हो गए हैं। लगता है कि हर दिशा में, हर ओर वासुदेव का चेहरा उग आया है। उनकी मुसकान ! मुसकान का रहस्य ! प्रकृति के अनंत रहस्यों से भी अधिक रहस्यमय रहस्य !

श्रीकृष्ण द्वारा शांत भाव से अश्वत्थामा के नाश को निर्माण की चुनौती देने वाले वे शब्द इस क्षण भी अर्जुन के कानों से मन तक रस की मिठास जैसे घुले हुए हैं।

रथ तीव्रगति से दौड़ा जा रहा है। युद्धों की शृंखला में बीता अर्जुन का जीवन—अर्जुन को केवल इस कारण नहीं खल सका है, क्योंकि प्रति-पल वे शांति से जुड़े रहे हैं ! युद्ध के प्रारंभ और अन्त के अर्थ और व्यर्थता बोध से साक्षात्कार करवाते रहे हैं कृष्ण !

जब-जब अकेले हुए हैं, श्रीकृष्ण के स्मरण मात्र से शक्ति मिली है उन्हें, उनका एकान्त टूटा है, इस क्षण भी यही कुछ अनुभव किया था उन्होंने और केवल इसी क्षण क्यों, इस अश्वमेधयज्ञ की जय-यात्रा के हर पड़ाव पर उन्होंने श्रीकृष्ण के स्मरण से शक्ति भी पाई है, साथ भी, सफलता भी।

कितनी ही बार सोचना चाहा है- ऐसा क्यों होता है ? केवल श्री-

कृष्ण स्मरण भर से यह प्रतिक्रिया क्यों होती है ?

रहस्य नहीं मिलता। पर रहस्य की तहों तक पहुंचने की अवश्य कोशिश करते रहे हैं अर्जुन।

लगा था कि पुनः इसी प्रश्न का उत्तर खोजने लगे हैं—क्यों ? श्रीकृष्ण स्मरण में ऐसा क्या है, जो भीष्म, युधिष्ठिर या किसी अन्य अग्रज या पूज्य के स्मरण से प्राप्त नहीं होता ? यह सम्पूर्णता श्रीकृष्ण नाम के साथ ही क्यों होती है ?

लगता है वायु को चीरते रथ की ध्वनियों में उत्तर गूंज रहा है। अकचका कर अर्जुन ने अपने चारों ओर देखा—नीला आकाश, दूर-दृष्टि के पार तक फैली प्रकृति, पहाड़ियों के पार आकाश को चूमती धरती का अनुमान, सभी में श्रीकृष्ण व्याप्त ! हर दिशा श्रीकृष्ण के ज्ञान से आलोकित ! हर रहस्य श्रीकृष्ण के हल से सुलझा हुआ ! हर अप्रकट प्रकट !

कारण ?

कारण है—श्रीकृष्ण का विराट रूप ! सत्य की वह ज्योति-सीमा जहां किसी दर्शित-अदर्शित में भेद नहीं रह जाता ।

मधुर स्मरण में खोये हुए थे कि चौंक गए। रथ नगर क्षेत्र के करीब आ पहुंचा था। वल्गा खींची और गति पर नियन्त्रण किया। सन्देशवाहक ने आकर सूचना दी थी, "पांडुपुत्र की जय हो। हम द्वारका क्षेत्र के समीप पहुंच रहे हैं महाराज ! ये जो बस्तियां दीख रही हैं, यदुवंशी बलभद्र की गौरवमयी द्वारका के ग्राम हैं।"

"हूं।" अर्जुन ने सोचा। एक मुसकान होंठों से लेकर मन तक बिखर गई थी, "श्रीकृष्ण का नगरक्षेत्र !" एक क्षण के लिए पलकें मूंदीं। मन-ही-मन नाम-स्मरण के साथ प्रणाम किया, फिर कहा था, "सेना का पड़ाव यहीं डाल दो नायक, और द्वारकापति के पास सन्देश भेजो कि राजा युधिष्ठिर का जय-सन्देश लेकर अश्वमेधयज्ञ का अश्व आ पहुंचा है। अर्जुन सेना के साथ हैं।"

"जैसी आपकी आज्ञा देव !" नायक चला गया था। रथ से उतरकर

अर्जुन प्राकृतिक समृद्धि से पूर्ण द्वारका के क्षेत्र में घूमने लगे थे। सेना पड़ाव डाल रहीं थी।

वातावरण में हलकी नमी थी। कुन्तीसुत ने थके बदन पर हलकी-सी चिपचिपाहट का अनुभव किया था। सागर के समीप स्थित इस भूखंड का आकाश, वायु, पृथ्वी सभी कुछ खारे पानी का नमकीनपन लिए हुए थीं। पर उतना ही मीठा श्रीकृष्ण का नाम, उनकी स्मृति। अर्जुन को मालूम है कि इस समय वे नगरक्षेत्र में नहीं होंगे। वे हैं हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर के भारत-विजय का अन्तिम समारोह आयोजित करवाने में व्यस्त हैं। जैसे ही अर्जुन इस पृथ्वीखंड का जय-सन्देश लिए हुए हस्तिनापुर पहुंचेंगें, निश्चित शुभ मुहूर्त में यज्ञ की तैयारियां होने लगेंगी।

सन्ध्या झुकने लगी थी और उसके साथ-साथ शरीर विश्राम की इच्छा से घिरा हुआ नशे की बोझिलता अनुभव कर रहा था। अर्जुन कुछ समय इसी तरह यहां-वहां विचरते रहे, इस बीच पड़ाव लग जाने की सूचना आ पहुंची। अर्जुन शिविर में पहुंचे।

हाथ-मुंह धोकर संध्यावन्दन के बाद मन ने बहुत हलका अनुभव किया था उन्होंने। द्वारका क्षेत्र होने के कारण वे ही नहीं, पांडव सेना निश्चिन्त थी। युधिष्ठर का सन्देशवाही अश्व थामने का सामर्थ्य या इच्छा इस क्षेत्र के लोगों में नहीं हो सकती।

भव्य आसन पर लेटते समय अर्जुन ने अनुचर को बुलाकर पैर दबाने का आदेश दिया था। शरीर के आकार में उनकी पिंडलियां बहुत भारी थीं। अनुचर ने उन्हें दबाया तो बदन में और हलकापन अनुभव किया था उन्होंने।

सम्पूर्ण भरत-खंड में धर्मराज युधिष्ठिर की विजयदुन्दुभी बजाते आये अर्जुन अब अपनी जय-यात्रा के लगभग अन्तिम पड़ावों पर थे। इस बीच बहुत कुछ देखा और सीखा भी था उन्होंने। भरत-खंड के वैविध्य में एकात्म को पहचाना था, संस्कृति के सैकड़ों ही अनजाने अध्यायों का अध्ययन किया था। यह यात्रा से अधिक अनुभव था। अर्जुन जितनी थकान अनुभव कर रहे थे, उससे कहीं अधिक मन संतोष से भरा हुआ था। विशाल भरत-खंड प्रशासनिक दृष्टि से पचासों राज्यों में बंटा हुआ था, किन्तु हर राज्य-

सम्बन्धों और पारिवारिक रिश्तों के अतिरिक्त रीति-रिवाजों, मान्यताओं और नैतिक मूल्यों की एक अखंड माला से जुड़ा हुआ। याद आया था श्रीकृष्ण का कथन, एक बार बोले थे, "इस बिखराव को सम्पूर्णता के एकत्व में बांध देने के लिए ही मैंने पांडवराज युधिष्ठिर को चुना जिष्णु ! मेरी इच्छा है कि भरत-खंड के सब राजा राज्य करें, किन्तु उनका नेतृत्व एक ऐसा मनुष्य करे जो समय का सबसे श्रेष्ठ धर्मात्मा हो। न्याय जिसकी शक्ति रहे, सत्य जिसका तेज और शान्ति जिसका दान ! वह सब मैं युधिष्ठिर में ही पाता हूं अर्जुन ! वही इस कार्य के लिए उपयुक्त हैं।"

अर्जुन चकित होकर देख रहे थे उन्हें। कभी समझा था कि पांडवों की और कृष्ण के झुकाव का कारण संभवतः कुन्ती और सुभद्रा से यादवों का रक्त-सम्बन्ध है; किन्तु लगा था, कारण कुछ और। स्तब्ध और चकित होकर श्रीकृष्ण की ओर देखते रह गए थे अर्जुन। मन अनायास ही अनेक प्रश्नों से भर आया था।

श्रीकृष्ण और अर्जुन की वह भेंट यूं ही नहीं थी। महाभारत के घोर संग्राम का निर्णय बाध्य होकर लेना पड़ रहा था पांडवों को। दौत्य भाव से पांडवों का अधिकार सन्देश लेकर कौरव पक्ष में पहुंचे कृष्ण बहुत पीड़ित और निराश होकर लौटे थे हस्तिनापुर से। कहा था, "धर्मराज ! उस दुर्बुद्धि को केवल मैंने ही नहीं, वृद्ध भीष्म और विदुर ने भी बहुत तरह समझाया। व्यर्थ नाश का आमंत्रण न करने और न्यायपूर्वक आपको अपना अधिकार दे देने के लिए कहा, किन्तु वह कुछ भी न माना। वह तो इस सीमा तक उद्दंड और नीच हो चुका है कि उसने छलपूर्वक मुझे भी पकड़ लेने का कुविचार किया। राजा दुर्योधन से इस बार बातचीत करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि वह कभी भी न्याय की राह नहीं पकड़ेगा। यही नहीं, वह न तो आप पांडव बन्धुओं से अच्छा व्यवहार करेगा और न ही किसी शर्त पर संधि करेगा।"

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, कुंती और नकुल-सहदेव के साथ-साथ द्रौपदी आदि भी चिन्तित हो गए थे। बुझा चेहरा और पिटा स्वर लिए युधिष्ठिर

ने प्रश्न किया था, 'अब हमें क्या करना चाहिए श्रीकृष्ण !'"

"युद्ध !" श्रीकृष्ण ने निर्णायक स्वर में उत्तर दिया था, "अब वही श्रेष्ठ और सत्य है। युद्ध को यथासंभव टालना ही मैंने मनुष्य जाति के शुभार्थ और पृथ्वी की शांति के लिए उपयुक्त समझा था; किंतु अब लगता है कि विना युद्ध किये धर्म की स्थापना नहीं होगी। अतः मैं युद्ध को ही एकमात्र राह मानता हूं। वही धर्म है।"

श्रीकृष्ण के शब्दों ने सहसा चुप कर दिया था सभी को। श्रीकृष्ण उन्हें उसी स्तब्ध स्थिति में छोड़कर अपने कक्ष में चले गये थे।

स्तब्धता उसी तरह थी। सब एक-दूसरे को देखते हुए, किंतु चुप। इस चुप की भी एक भाषा। हर दृष्टि में श्रीकृष्ण के अभिप्राय से सहमति। युधिष्ठिर भी शांत होकर जैसे यही कुछ बोल गये थे।

युद्ध !

कौरव-पांडवों में युद्ध !

एक-एक कर पूज्यों के चेहरे उभरने लगे थे अर्जुन के सामने। भीष्म, द्रोण, शकुनि, आदि···कोई गुरु ? कोई पितामह ? कोई गुरुपुत्र और कोई निकटतम सम्बन्धी। ये सब कौरव-पक्ष में होंगे और युद्ध का अर्थ है—इन सबको हत करना। हे भगवान ! एक अजीब-सी दुविधा और चिंता ने ग्रस लिया था अर्जुन को। सहज था···अर्जुन जानते थे, पांडव पक्ष में वही हैं, जिन पर समय के श्रेष्ठतम महावीरों को हत करने का नैतिक दायित्व आयेगा।

मन अकुला उठा था। भला श्रीकृष्ण ने यह युद्ध निर्णय कैसे ले लिया ? सभा से उठकर व्यग्र और चिंतित भाव से श्रीकृष्ण के कक्ष की ओर चल पड़े थे।

समाचार पाते ही श्रीकृष्ण अपने कक्ष से बाहर चले आये। दोनों उद्यान में टहलते हुए विचार-मग्न और शांत रहे। अर्जुन के भीतर अनेकानेक प्रश्न थे, हर प्रश्न से एक उप-प्रश्न जुड़ा हुआ। लम्बा तर्कातर्क होगा। पर श्रीकृष्ण से तर्क करना क्या सम्भव है ? एक पल के लिए मन

दुविधा से भर उठा था।

किन्तु तर्क तो करना ही होगा। कुछ संकोच से भरकर पूछ भी लिया था अर्जुन ने, "मित्र ! युद्ध-निर्णय को लेकर क्या और विचार नहीं किया जा सकता ?"

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था। बहुत शान्त, सधा स्वर, "अब विचार की सभी स्थितियां समाप्त हो गई हैं पार्थ।"

अर्जुन पुनः कुछ पूछना चाहते थे; किंतु लगा था कि इस उत्तर में ही उनके हर प्रश्न का आदि-अन्त और रहस्य उद्घाटित हो चुका है। सच ही तो दुर्योधन ने विचार की सभी स्थितियां समाप्त कर दी थीं।

अर्जुन के भीतर का उबाल जान लिया था श्रीकृष्ण ने। कहा, "कभी-कभी नाश से भी निर्माण प्रारम्भ होता है किरीटी। संभवतः दुर्योधन ने यही उचित समझा है और फिर वयोवृद्ध राजनीतिजीवी शकुनि तो यों भी अन्धकार में प्रकाश देखते हैं। अन्तर कुछ नहीं पड़ता। या तो प्रकाश के बाद अंधकार हो, या अंधकार के बाद प्रकाश। दोनों एक-दूसरे के अभिन्न हैं।" समझो कि नाश से निर्माण की नीति ही इस समय सिद्ध हुई है। सहसा हंस पड़े थे वह। निर्मल, धुली और चमचमाती हुई हंसी। जिस युद्ध शब्द ने प्रतापी अर्जुन का जी कुम्हला दिया है, वही शब्द इतना अप्रभावी हुआ है कृष्ण पर ? हतप्रभ देखते रह गए थे वह हंसी। एकदम सहज, स्वाभाविक, प्रतिक्रियाहीन।

"यूं भी अर्जुन, जब-जब अनीति, अधर्म, क्रूरता और अमानवीयता बढ़ती है, तब-तब नाश अवश्यम्भावी होता है और नाश, अपने-आपमें अस्तित्वयुक्त है। जैसे अस्तित्व युक्त है— निर्माण ! उसी तरह जिस तरह अंधकार का सत्य प्रकाश है और प्रकाश का सत्य अंधकार। यह एक-दूसरे के पूरक हैं। जीवन और मृत्यु की तरह। अतः दोनों नाशवान होकर भी नाशहीन !" श्रीकृष्ण बोलते गये थे, "अतः पांडवों और कौरवों में संधि का धुंधलका आये या युद्ध का अंधकार, अंतर नहीं पड़ेगा। अंतर इस बात से पड़ सकता है कि न्याय पक्ष पराजय पीड़ा का कष्ट भोगे। यह अधर्म होगा, अतः युद्ध धर्म !"

अर्जुन के भीतर उभरे अनेक प्रश्न सहसा कोहरे की तरह लुप्त हो गये

थे। धुंधलाते और धीमे-धीमे अस्तित्वहीन होते हुए। मन ज्योतित किरण से आलौकित हो उठा। श्रीकृष्ण की ओर अनजाने ही ऐसी दृष्टि से देखने लगे थे जैसे सत्य से स्तब्धतापूर्ण साक्षात्कार हो गया हो।

"पांडवों को उनका नैतिक अधिकार मिलना ही चाहिए।" श्रीकृष्ण ने कहा था, "यदि उसके लिए दुर्योधन की दुर्बुद्धि ने युद्धमार्ग चुना है तब वही सही।"

"किंतु यशोदानन्दन !" अर्जुन अकुलाकर पुनः प्रश्न कर बैठे थे, "इस युद्ध में भयावह संहार होगा। जड़-चेतन सभी प्रभावित हो जायेंगे। यही नहीं, वंश के पूज्यों, गुरु और गुरु-पुत्रों के अतिरिक्त निकटतम सम्बन्धियों को भी पांडव मारने वाध्य होंगे ? कैसे ? किस आत्मशक्ति के अवलम्बन से यह दुष्कर और क्रूर निर्णय पूर्ण हो सकेगा — आपने सोचा ?"

श्रीकृष्ण रुके। अर्जुन की ओर देखा। लगता था कि अर्जुन का चेहरा केवल मुरझाया हुआ ही नहीं है, दुविधापूर्ण मनःस्थिति के कारण जल गया है। एक अजीब-सी वीभत्सता और पीड़ा की कालिख पुती हुई थी उनके चेहरे पर। आंखें पथराई हुई-सीं, होंठ रह-रहकर असंयत भाव से थरथराते हुए। श्रीकृष्ण ने वह सारी पीड़ा, झुलसन, दुविधा, कष्ट और असंयमित मनःस्थिति पढ़ ली थी। मुसकरा दिए, रुका हुआ कदम पुनः आगे बढ़ा दिया, फिर गंभीरता के सागर-गौरव से भरे शब्दों में कहा था, "तुम किनको हत करोगे, कुन्तीसुत ?"

"यही, कि पितृ भीष्म, आचार्य द्रोण, अनेक सगे-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव, कुल-पुत्र आदि ?" अर्जुन ने बड़बड़ाकर उत्तर दिया।

श्रीकृष्ण हंसे, "जिनके तुमने नाम लिए क्या वे नाशहीन हैं पांडव ! बतलाओ तो ? मृत्यु-मुक्त हैं वे ? और क्या शरीरांत से समाप्त हो जाएंगे वे ?"

अर्जुन का मुंह आश्चर्य से खुला रह गया था ? प्रश्न का उत्तर इतना बड़ा प्रश्न स्वयं में हो सकता है, कल्पनातीत था। थूक का घूंट निगलकर देखते ही रह गए थे उन्हें।

पर श्रीकृष्ण सहज, शान्त भी और सरल भी। उन्होंने प्रश्न से जुड़ी एक कड़ी और बिखरा दी थी अर्जुन के सामने, "इससे पूर्व शान्तनु को

किसने हत किया था ? तुम्हारे पिता पांडु का निधन क्यों हुआ, किसने किया ? जिन भरत के नाम पर यह विशाल पृथ्वी-खंड जाना जाता है, वह कैसे हत हुए ? किसने मारा उन्हें या किस कारण मरे ? उत्तर है तुम्हारे पास ?"

अर्जुन सकपकाये हुए से देख रहे थे यशोदानन्दन को। वह हंसे थे, "उत्तर नहीं है ना तुम्हारे पास। नहीं हो सकता। कारण यह है श्वेत-वाहन ! यह प्रश्न ही तुम्हारा विचार-विषय नहीं है, क्योंकि जीवमात्र का शरीर सत्य मृत्यु है, और मृत्यु का सत्य जीवन ! रोग, कष्ट, युद्ध अथवा आत्मघात केवल माध्यम हैं, चिरंतन के क्रम को चलाने के। वे न किसी के मारने से मरते हैं, न किसी के कारण जीवित रहते हैं। युद्ध में यदि तुम्हारे हाथों कोई हत होगा, तो केवल उसका शरीर हत होना ही सत्य होगा—कारण रूप में तुम्हारी उपस्थिति या अनुपस्थिति असत्य। सत्य अविनाशी है कुन्तीपुत्र !"

"पर हे निर्गुण, उस समय मैं क्या करूंगा जब युद्ध-क्षण में मेरे पूज्य, मेरे वंश-अंश कौरव कुमार अथवा मेरे गुरु मेरे सामने होंगे ?" अर्जुन की दुविधा मिटी थी, किन्तु पूरी तरह नहीं। प्रश्न फिर से उबल आया था।

श्रीकृष्ण ने सुना, अप्रभावित होकर उत्तर दे दिया था, "स्नेहालिंगन के लिए बढ़ी बांहें जितना बड़ा संसार सत्य होती है पांडुपुत्र ! उतना ही बड़ा सृष्टि-सत्य प्रहार करने के लिए उठे हाथ से बचाव भी होता है; किंतु सत्य की शृंखला यहीं समाप्त नहीं हो जाती। वह पृथ्वी से प्रारंभ होकर आकाश की अनंतता तक बिखरी हुई है। जितना बड़ा सत्य हमारा पृथ्वी पर खड़े रहना है, उतना ही बड़ा सत्य यह भी है कि अंतहीन आकाश हमारे ऊपर है। पृथ्वी पर खड़े रहने के सत्य को जान लेने से ही मनुष्य पूर्ण नहीं होता, वह पूर्ण हो सकता है, तब जब आकाश के अनंत सत्य को पृथ्वी की तरह जान सके।"

"मैं समझा नहीं शंख-चक्रधारी !" अर्जुन असमंजस से बोल पड़े थे।

श्रीकृष्ण थमे। ज्योति का एक समुद्र अर्जुन की पुतलियों के भीतर

उंडेलते हुए उत्तर दिया था उन्होंने, "बैठो। समझाता हूं।" कहकर वे एक वटवृक्ष की ओर बढ़ गए थे, जिसके नीचे विश्राम के लिए आसन बना हुआ था। अर्जुन ने उनका अनुकरण किया।

कितने ही प्रश्न ? और कितने ही उत्तर ! असंख्य रहस्य और असंख्य रहस्योद्घाटन। श्रीकृष्ण से तर्कातर्क करके केवल ज्ञान नहीं, शक्ति मिलती रही है अर्जुन को। यह शक्ति ही उनकी उपलब्धि। यह उपलब्धि ही अर्जुन का पूर्णत्व।

उस दिन अनेक प्रश्नों के बाद कुहांसे की तरह जीवन-मरण की गुत्थियां सुलझ गई थीं और एक उसी बार क्यों, अनेक बार, अनेक अवसरों पर श्रीकृष्ण से हर प्रश्न का समाधान जिस तरह, जिस रूप में मिला है—उसने बाध्य कर दिया है कि वे अनंत को श्रीकृष्ण के रूप में ही समझें और देखें। उस तरह जानने-समझने के बाद श्रीकृष्ण मनुष्य जन्म में होकर भी मनुष्य नहीं रह गए हैं कुन्ती पुत्र अर्जुन के लिए। वे प्रश्न भी हैं, उत्तर भी। जिज्ञासा भी और समाधान भी।

उसी दिन से श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप का दर्शन प्रारंभ किया था अर्जुन ने। धर्म, दर्शन, ज्ञान और अज्ञान, नाशयुक्त और नाशहीन के अंतरसत्य, सत्यों की शृंखला के अनंत क्रम, मूल्यों का यथार्थ और यथार्थ के मूल्य, मोहहीनता का सुख और सुख का सत्य।

उसी दिन तो ज्ञात हुआ था कि किसी लौकिक संबंध के कारण नहीं, अलौकिक सत्य के कारण श्रीकृष्ण पांडवों के पक्ष में हैं। उनका पक्ष लेना भी पक्षहीनता की तरह है।

फिर वह स्थिति आ पहुंची थी, जब श्रीकृष्ण का प्रत्येक शब्द ही अर्जुन की दिशा और लक्ष्य बन गया। उनके बढ़े चरणों का अनुमान अर्जुन का सत्य।

जब-जब, जिस-जिस क्षण अर्जुन मनुष्य हुए, श्रीकृष्ण से मिले ज्ञान ने

उन्हें [illegible] के अमरत्व में परिवर्तित कर दिया। जब भी मोह या दंभ ने उन्हें ग्रसा, श्रीकृष्ण के अमृतवचनों ने उनका उद्धार किया।

भयावह युद्ध की वीभत्सता ने भी अब अर्जुन को प्रभावहीन कर दिया है, तब प्रभावयुक्त यदि कुछ शेष रहा है तो श्रीकृष्ण से प्राप्त ज्ञान। यह कर्मज्ञान ही है, जो अर्जुन अथकित भाव से निवाहे जा रहे हैं। सुख-दुःख, कष्ट, पीड़ा, जीवन और मृत्यु सब अर्थयुक्त भी हैं उनके लिए अर्थहीन भी। सहजता और शांति ने मन के हर उद्वेग, हर इच्छा, हर कामना और हर विजय-पराजय की स्थिति पर काबू कर लिया है। अविचलित दृढ़ता से पूर्ण हैं वह।

और श्रीकृष्ण की धरती पर आकर अनायास ही श्रीकृष्ण दर्शन की तीव्र इच्छा जनम आई मन में। कर्मयज्ञ को जितनी शीघ्र पूर्ण कर सकें, उतनी शीघ्र अर्जुन अनंत के दर्शन कर सकेंगे, उन्होंने सोचा।

किंतु आगे सोचने का अवसर नहीं मिला। द्वारपाल विनम्र-भाव से प्रणाम करके सामने आ खड़ा हुआ था। चेहरे पर चिंता !

अर्जुन ने उसे देखा। दृष्टि में प्रश्न, "क्या है ?"

"देव ! वृष्टि और अंधक वंश के कुछ उद्दंड बालकों ने अश्वमेधयज्ञ के संदेशवाहक को पकड़ लिया है।"

अर्जुन चकित हुए। बोले नहीं, किंतु मन-ही-मन विचार जनम आया, "आश्चर्य ! वृष्टि और अंधक जातीय बालक ? श्रीकृष्ण के कुलांश ?"

"आज्ञा करें राजन् ?" द्वारपाल पूछ रहा था।

"सेनानायक को भेजो।" अर्जुन ने कहा। द्वारपाल मुड़ा, तभी शिविर के बाहर कोलाहल होने लगा।

अर्जुन शैया से उठे। सैनिकों के स्वर अधिक तेज होने लगे थे। बाहर जाएं, इसके पहले ही द्वारपाल पुनः उपस्थित हो गया था, "पांडवश्रेष्ठ ! महाराज उग्रसेन और पूज्य वसुदेव उपस्थित होना चाहते हैं ?"

अर्जुन ने कुछ नहीं कहा। स्वागत के लिए शिविर-द्वार पर जा पहुंचे। वृद्ध वसुदेव को साथ लिए उग्रसेन चले आ रहे थे। अर्जुन ने राज शिष्टा-

चार के साथ उनकी अगवाई की। उग्रसेन ने बतलाया था कि बालकों की भूल पर उन्हें समझा दिया गया है और द्वारका में पृथ्वीजयी अर्जुन के स्वागतार्थ वे सब उपस्थित हुए हैं।

अर्जुन ने आभार व्यक्त किया था, फिर सभी को इष्ट मित्रों सहित महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में उपस्थित होने का संदेश दिया। राजा उग्र-सेन और वसुदेव ने स्नेहपूर्वक आमंत्रण स्वीकार किया था। द्वारका में वह रात्रि विताकर अर्जुन जय-संदेश सहित समुद्र के पश्चिमी किनारों से होते हुए गांधार की ओर बढ़ गए थे। पंचनद क्षेत्र को पार कर लिया था उन्होंने।

विश्वास था कि यज्ञ-अश्व को गांधार में सम्मान मिलेगा; किंतु उस समय चकित हुए थे, जब पड़ाव पड़ते ही पता चला था, "आश्चर्य की बात है कुंतीसुत! स्वर्गीय महाराज शकुनि के पुत्र अल्पायु गांधारराज ने पांडव-राज युधिष्ठिर के जय-संदेश को चुनौती दी है। अश्वमेधयज्ञ का अश्व गांधारराज और उनके सैनिकों ने पकड़ लिया है।"

गहरा सांस लिया था अर्जुन ने। एक बार मामा शकुनि का नीतिज्ञ चेहरा स्मृतिपटल पर उभरा था, फिर बोले थे, "जैसी गांधारराज की इच्छा! युद्ध हो!"

रणभेरी बजने लगी थी। पर आशा के अनुसार बहुत समय नहीं टिक सकी थी गांधारसेना। अर्जुन के तीव्र बाणों ने हाहाकार मचा दिया था। युवक गांधारराज बुरी तरह घायल हो गए थे। कुपित अर्जुन उनका संहार कर दें, इसके पहले ही समाचार मिल गया था, "गांधार की राजमाता, स्वर्गीय महाराज शकुनि की पत्नी वीर धनंजय के स्वागतार्थ पधारी हैं!"

अर्जुन ने रथ छोड़ दिया था। युद्धबंदी के आदेश दिए। सेना-शिविर में राजमाता का स्वागत किया।

गांधार-जय पूर्ण हुई।

अश्वमेधयज्ञ का अश्व अब अपराजित था और इस जय के साथ ही पांडवराज युधिष्ठिर का आधिपत्य भरतखंड के सभी राजाओं ने स्वीकार लिया था। अर्जुन ने हस्तिनापुर वापसी ली थी।

जय-संतोष के सुख से भरे हुए अर्जुन विभिन्न जगहों पर पड़ाव डालते हुए हस्तिनापुर की ओर बढ़े आ रहे थे। उनसे पूर्व चला जा रहा था दिग्विजयी वीर का यश-समाचार।

श्रीकृष्ण से मिलेंगे अब। उत्साह और प्रसन्नता से मन भरा था। कभी-कभी स्वयं पर चकित भी होते थे, कैसे श्रीकृष्णमय व्यक्तित्व बन गया है उनका; पर लगता कि इसीमें सुख मिलता है। संतोष भी। आनंद भी।

ज्ञान की अजस्त्र धारा में सारे जीवन मित्र-मार्ग से नहाते रहे अर्जुन को कभी-कभी अनुभव होता है जैसे जीवन के बहुत-से क्षण, बहुतेक घटनाओं में अतिसामान्य मनुष्य की तरह व्यवहार कर उठते हैं। जीवन जगत की अर्थमयता और अर्थहीनता से परिचय पाकर भी सहसा मोहयुक्त मनुष्य बन जाते हैं, क्यों ? लगता है, अपने ही भीतर से उत्तर उठ आता है, "इसलिए अर्जुन कि तुम मनुष्य हो ! सौभाग्यशाली हो कि नारायण को मित्र-रूप में प्राप्त करने का गौरव मिला तुम्हें; किंतु हो तुम मनुष्य !"

निस्संदेह मनुष्य ! कभी-कभी लगता है जैसे यही बोध है जो श्रीकृष्ण के दर्शन कराता है। यह न होता तो श्रीकृष्ण को कैसे पहचान सके होते अर्जुन ?

स्मरण करते ही पुनः वह क्षण याद आ जाता है, जब उत्तरा ने परीक्षित का प्रसव किया था। क्रूरबुद्धि अश्वत्थामा के कोप रूपी ब्रह्मास्त्र के दुष्प्रभाव से ग्रस्त गर्भिणी उत्तरा।

वह पल भूल नहीं सकेंगे अर्जुन ! अनायास ही सहा, किंतु युधिष्ठिर जैसे तत्वज्ञानी और धर्मात्मा भी उस क्षण विचलित हो गए थे। वंशनाश का भय तिलमिलाकर रुला गया था उन्हें।

वह क्षण··· ?

बलदेव, श्रीकृष्ण, सात्यकि आदि के स्वागतार्थ महाराज युधिष्ठिर मुख्यद्वार पर पहुंच गए थे। पीछे-पीछे राज्य के उच्चाधिकारी और शेष

चारों पांडव भाई।

द्वारका की लम्बी यात्रा से चले आ रहे थे यादव गण। सुभद्रा को साथ लाए थे श्रीकृष्ण। कुछ समय पहले उत्तरा हस्तिनापुर आ चुकी थीं।

जिस क्षण यादव राजाओं का स्वागत-सत्कार हो रहा था, उसी क्षण शुभ समाचार देने वाले वाद्ययंत्रों की ध्वनियां उभरीं। श्रीकृष्ण, बलदेव आदि के अतिरिक्त सभी ने चकित होकर पांडवों को देखा। युधिष्ठिर ने मुसंकराकर उत्तर दिया था, "हस्तिनापुर में आप यादवों का आगमन बहुत शुभ हुआ राजन्! शुभ सूचक वाद्ययंत्रों का यह स्वर बतला रहा है कि उत्तरा के गर्भ से पुत्र-जन्म हुआ है।"

वे सब गले मिले थे। राजमहल की ओर चल पड़े। अभी पहुंचने को ही थे कि सहसा महल में शोर-गुल होने लगा था। स्त्रियों के चीत्कार और रुदन की ध्वनियां उभरने लगी थीं। सभी ने भयभीत होकर एक-दूसरे को देखा था। अर्जुन की दृष्टि श्रीकृष्ण पर अटक गई थी जो सहसा गंभीर होकर तेज कदमों से सबके आगे-आगे चलने लगे थे।

किसने किससे क्या कुछ कहा, यह सुनने-जानने का अवसर न था। श्रीकृष्ण के पीछे हो लिए थे अर्जुन और श्रीकृष्ण सेवक से पूछते हुए, "रनि-वास की ओर मार्ग दिखाते चलो!"

उनके पीछे सब चले। सब चुप। सन्नाटे में डूबे हुए। इस सन्नाटे को स्त्रियों के रुदन और इधर-उधर सेवकों की दौड़ ने और डरावना बना दिया था।

स्पष्ट था कि उत्तरा के जन्म से पैदा होने वाले शिशु को लेकर कोई दुर्घटना हो गई होगी और दुर्घटना भी क्या होनी थी? निश्चित था। निश्चय ही अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से प्रभावित गर्भ के कारण उत्तरा का

सचमुच शिशु मृत हो गया होगा।

श्रीकृष्ण के कदमों की गति और बढ़ गई। उनके पीछे-पीछे पांडव एवं अन्य यादव लगभग दौड़ने से लगे। कुछ क्षण बाद ही वे सब रनिवास के मुख्य क्षेत्र में थे। बहुत से लोग इसी सीमा पर आकर ठहरे रह गए थे। आगे बढ़ते-गए थे केवल श्रीकृष्ण और पांडव-बन्धु।

दो कक्ष पार करके वे सब उस विशाल कक्ष में जा पहुंचे थे, जिसमें कौरव-पांडव परिवार की महिलाएं एकत्र होकर विलाप कर रही थीं। श्रीकृष्ण को सामने पाकर कुन्ती, द्रौपदी आदि उनके सामने जा पहुंची थीं। सिसकते हुए कहने लगी थीं, "अशरीरी ! अब तुम्हीं हो जो पांडवों के इस वंश-अंश को बचा सकते हो ! उत्तरा के गर्भ से पुत्र जनमा; किन्तु कुछ क्षण बाद ही मृत हो गया। उसकी थमी हुई सांसों को चलाने का चिकित्सक प्रयास तो कर रहे हैं; किन्तु आपकी कृपा और इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता।"

कृष्ण ने सुना, कुछ क्षण थमे, फिर बिना कुछ कहे तीव्र गति से उस ओर बढ़ गए, जिस ओर उत्तरा थी। सूतिकागृह में निस्संकोच प्रवेश कर गए थे वह।

केवल अर्जुन ही उनके पीछे-पीछे गए।

सूतिका-गृह के बीचोबीच एक बड़ी शैया में उत्तरा लेटी थी। एक ओर शिशु को घेरे हुए चिकित्सक। श्रीकृष्ण ने गृह-प्रवेश के साथ ही द्वार बंद कर लिए थे। व्यवस्था पर एक दृष्टि डाली। प्रसन्न हुए।

---

१. महाभारत (अश्वमेध पर्व) के ६६वें अध्याय में श्लोक-क्रम ५ से १० के बीच परीक्षित को उनकी जन्मकथा सुनाते हुए वैशम्पायन का यह कथन आया है—"वृष्टि-वंशियों के आ जाने पर (हस्तिनापुर में) उत्तरा के गर्भ से महाराज परीक्षित का जन्म हुआ, किन्तु ब्रम्हास्त्र के प्रभाव से पीड़ित होने के कारण उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। पहले तो पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर रनिवास में हर्षसूचक स्वर होने लगे, किन्तु शीघ्र ही उस पुत्र को मरा देखकर रोना-धोना मच गया !"

चिकित्सकीय दृष्टि से सभी प्रबंध किए गए थे वहां। सम्पूर्ण कक्ष को चारों ओर से अग्नि जलाकर गर्म रखा गया था। वृद्धा, अनुभवी सेविकाओं और परिचारिकाओं के अतिरिक्त शल्य क्रिया के अस्त्र आदि भी मौजूद थे। बहुपुष्प मालाओं से कक्ष सजाया गया था। उनकी सुगंध से एक स्वस्थ वातावरण बना हुआ था। जल से भरे कलशों के अतिरिक्त घी, सरसों आदि विविध उपयोगी वस्तुएं रखी थीं। कुछेक चिकित्सक चिन्तित भाव से उत्तरा के इधर-उधर मौजूद थे। श्रीकृष्ण ने व्यवस्था पर सन्तोष व्यक्त किया था।[1]

श्रीकृष्ण की ओर थकी-कमजोर दृष्टि उठाकर उत्तरा ने जैसे ही देखा, वैसे ही विलख पड़ी थी, "पूज्य ! किसी तरह मेरे पुत्र को जीवन दीजिए। अन्यथा मैं प्राण त्याग दूंगी ! आप समर्थ हैं और आपने कहा भी था कि अभिमन्यु के अंश को जीवित रखेंगे। अब किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं, महात्मन् !"

श्रीकृष्ण ने दिलासा दिया था दुखी माता को। बोले थे, "धैर्य से काम

---

१. महाभारत (अश्वमेघ पर्व) के ६८वें अध्याय में श्लोक-क्रम १ से १० के बीच कहा गया है—"...उन्होंने (कृष्ण) अभिमन्यु के पुत्र को जिला देने का वादा किया ! श्रीकृष्ण उसी दम सूतिका-गृह में घुस गए। उन्होंने देखा कि वह घर मालाओं से सजाया गया है। उसके चारों ओर जल से भरे कलश, घी, तिन्दुक, काष्ठ की आग, सरसों और पैने अस्त्र आदि रखे हैं। जगह-जगह पर आग जल रही है। बूढ़ी स्त्रियां और चतुर चिकित्सक बैठे हुए हैं..."

उपरोक्त वर्णन से सिद्ध है कि परीक्षित का जन्म सम्पूर्ण चिकित्सकीय सुविधाओं के बीच हुआ। संहारक अस्त्र के प्रभाव से वह सांस रुकी स्थिति में पैदा हुआ। एक ओर उसकी चिकित्सा की समूची विधियां चली होगीं, दूसरी ओर श्रीकृष्ण की यौगिक शक्ति ने उसे जीवनदान दिया। ६९वें अध्याय में श्लोक-क्रम २२ से २४ के मध्य श्रीकृष्ण का यह कथन भी आया है—"मेरे सब पुण्यों के प्रभाव से अभिमन्यु का मृत-पुत्र जीवित हो उठे।" फिर लिखा है—"श्रीकृष्ण के यों कहते ही उत्तरा का पुत्र धीरे-धीरे श्वास लेने लगा।"

लो, चिरायुष्मती ! मेरा कहा असत्य नहीं होगा ! तुम्हारा पुत्र अवश्य ही जीवन पाएगा।" फिर बिना उत्तरा की ओर देखे हुए सहसा श्रीकृष्ण ध्यानस्थ हो गए थे। उनके होंठ धीमे-धीमे थरथराए थे -- कुछ कहा था उन्होंने··· संभवतः अपनी यौगिक शक्ति को जाग्रत किया था उन्होंने। हत-प्रभ से खड़े अर्जुन उनकी ओर देख रहे थे।

श्रीकृष्ण कुछ क्षण पलकें मूंदे रहे थे। अर्जुन को लगा था कि उनका चेहरा किसी दिव्य प्रकाश से आलौकित हो उठा है। आश्चर्यजनक आभा उनके सम्पूर्ण चेहरे पर बिखर गई थी, फिर उनकी दृष्टि खली, पर यह दृष्टि ?

अर्जुन को अब तक स्मरण है वह दृष्टि ! अद्भुत और अलौकिक ! निस्सन्देह तप-तेज से दमदमाती वह दृष्टि सूर्य की तीव्र तेजस्वी किरण से किसी तरह कम न थी।

और तभी एक चमत्कार देखा था उन्होंने। संभवतः वहां उपस्थित सभी स्त्री-पुरुष उस अलौकिक चमत्कार को देखकर हतप्रभ से खड़े रह गए होंगे। बालक की धमनियों में गति के साथ-साथ कुछ उठान-गिरान भी देखा था सबने। एक हर्षित चिकित्सक उत्तेजना से लगभग चिल्ला पड़ा था, "आश्चर्य ! पांडवों का मृतांश जीवंत हो उठा !"

एक बार पुनः हस्तिनापुर का राजभवन और सम्पूर्ण वातावरण हर्षोल्लास से भर गया था। पल भर पूर्व शोकवश भर आई आंखों के आंसू सहसा आनन्दातिरेक के तेज से दमदमा उठे थे।

योगी कृष्ण ने अपनी अलौकिक शक्ति का अद्भुत चमत्कार पुनः दिखा दिया था।

पर अर्जुन जानते हैं -- श्रीकृष्ण की सहजता में ही चमत्कार है। उनके शब्द, उनका निर्देश, उनका संदर्भ कुछ भी चमत्कारहीन नहीं ! लौकिक से अलौकिक तक हर रहस्य उनका जाना हुआ, हर शब्द के स्वर में उनकी उपस्थिति और हर गंध उनकी असीमित सीमा !

जैसे-जैसे हस्तिनापुर की सीमाओं के करीब पहुंच रहे हैं अर्जुन, वैसे-वैसे श्रीकृष्ण नाम-स्मरण की सुखानुभूति से मन वसंत की तरह आनन्दित हो उठा है। सम्वेदना माधुर्य में शराबोर और विश्वास सागर की तरह

अनंत होता हुआ।

एक बार पुनः सदा जनमने वाले प्रश्न ने मन को घेर लिया है --क्यों होता है ऐसा ? और केवल अर्जुन के साथ ही ऐसा क्यों होता है ?

रथ की गति के साथ-साथ वायु को विपरीत दिशा में चीरते जाने का एक क्रमबद्ध शोर भी उठ रहा है, किन्तु अर्जुन उस शोर को सुन नहीं पा रहे हैं। वह केवल अपना प्रश्न सुन रहे हैं—अपने आपसे।

क्यों ?

इस क्यों के अनेक वार, अनेक तरह उत्तर देकर अपने ही भीतर समाधान खोज लिया है अर्जुन ने। पर लगता है कि नहीं, सच समाधान कभी नहीं खोज सके। जो कुछ खोजकर अपने ही भीतर जनमे प्रश्न के ज्वार को शांत कर लेते हैं, वह मात्र उनकी अपनी बौद्धिक क्षमता का संतोष है। उत्तर नहीं।

उत्तर होता तो प्रश्न बार-बार क्यों जनमता ? अनेक बार तो अर्जुन का मन होता था कि श्रीकृष्ण से ही पूछ लें, "बतलाइए तो विश्वात्मन् ? आपको लेकर सम्पूर्णतः बोध मुझे ही क्यों होता है ? मैं ही आपके मैत्री सुख का भागी क्यों हुआ हूं ? मुझे ही क्यों चुना है आपने ?"

पर हर बार मन की बात मन में ही रह गई है—किसी भी बार याद कर लेने, यहां तक कि प्रश्न करने का निश्चय कर लेने के बावजूद अर्जुन यह प्रश्न कर नहीं सके हैं यादवश्रेष्ठ से ! ऐसा क्यों ?

इस बार अवश्य ही पूछेंगे। अर्जुन ने निश्चय किया है। फिर यह सोचकर अपने पर ही खीझ उठे हैं—अनेक वार यही कुछ, इसी तरह तो निश्चय कर चुके हैं ? किन्तु जब-जब श्रीकृष्ण से चर्चा हुई है, किसी अन्य विषय-सन्दर्भ को लेकर उलझ गये हैं और विचारा हुआ—सदा प्रश्न ही बना रहा है !

अनायास अर्जुन को याद आया था। अकसर इसी तरह अनेक प्रश्नों

के उत्तर याद आते हैं। श्रीकृष्ण का किसी संदर्भ, विषय पर दिया गया उत्तर बहुमुखी होता है। उस उत्तर में अनायास ही अनेक प्रश्नों का समाधान छिपा रहता है। उनके हर शब्द का बहुआयामी प्रभाव, विभिन्न व्यक्तियों, स्थितियों, और वातावरण पर उसके अपने योग्य प्रभाव करता है...

हो सकता है कि बिना जाने-पूछे ही किसी बार श्रीकृष्ण के किसी उत्तर में अर्जुन के भीतर बार-बार जनमते रहे उस प्रश्न का उत्तर भी छिपा रहा हो ? मन सहसा ही इस शब्द-विचार से भर गया है।

स्मरण करना होगा ! अर्जुन ने सम्पूर्ण चेतना को एकाग्र भाव से उन घटनाओं से जोड़ दिया, जब श्रीकृष्ण से उन्हें घटना के कारण-करण की जानकारी मिली थी।

अनेक बार योग की विभिन्न स्थितियों, साधनों और मार्गों का विवरण देते रहे हैं कृष्ण। विभिन्न स्थितियों में इन विवरणों से अर्जुन चैतन्य हुए हैं, उन्हें दिशा मिली है उचित-अनुचित को जाना-समझा है उन्होंने। वही कुछ याद हो आया है।

युद्धपूर्व, युद्ध निर्णय ने ही मोहग्रस्तता से भर दिया था उन्हें !

उस मोहग्रस्तता के जाल को काटने के लिए श्रीकृष्ण से सांख्य योग, कर्मयोग, ज्ञान-योग, विज्ञान-योग विभूतियोग आदि विभिन्न उपदेश मिले थे। इन उपदेशों ने मोहग्रस्तता को तार-तार कर काट डाला था।

अनायास ही अर्जुन ने अनुभव किया था कि विभिन्न योग-मार्गों का स्मरण करने लगे हैं। संभवतः उस बार या ऐसे किसी अवसर पर किसी बार श्रीकृष्ण ने यह भी स्पष्ट कर दिया हो कि अर्जुन को ही क्यों चुना है उन्होंने ?

विजय-यात्रा की समाप्ति पर अनायास ही वे सभी उत्तेजित थे। स्फूर्ति से भरे हुए। हस्तिनापुर पहुंचने के आनन्द ने उन्हें प्रसन्नता और सुख से भर रखा था हर वाहन तीव्र गति से लक्ष्य तक पहुंचने को आतुर। बिलकुल पक्षियों की तरह, उत्साह और आवेग से भरा हुआ।

श्रीकृष्ण के उपदेशों और उनसे हुए तर्कातर्क के स्मरण पर अनेक वार लगता है कि वे उस विराट स्वरूप के दर्शन करने लगे हैं, जिसे उन्होंने युद्धपूर्व देखा था ! कृष्ण बोले थे, "इस दृष्टि से तुम 'मेरे' उस अद्भुत शक्ति-रूप के दर्शन नहीं कर सकोगे कुन्तीसुत ?"

"तब देव ?" व्यग्र अर्जुन ने किसी बच्चे की तरह सरलता से प्रश्न किया था। श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था, "सर्वज्ञ के उस तेज को सहने के लिए दिव्य दृष्टि चाहिए, पांडव ! वह मैं तुम्हें देता हूं। जिन-जिन योग साधनाओं और उनके प्रभावों का मैं वर्णन करता रहा हूं, उनके स्मरण से तुम मेरे दर्शन कर सकोगे पार्थ !"

और अर्जुन को लगा था कि उनकी आंखें मुंदने लगी हैं···कानों से वातावरण में विखरे स्वर धीमे-धीमे लुप्त होते जा रहे हैं। सम्पूर्ण एकाग्रता से उन्होंने निष्ठापूर्वक ज्ञान की उस अजस्र सरिता का दर्शन किया था, जो विभिन्न योगों और उनकी क्रियाओं के रूप में श्रीकृष्ण से सुनने मिली थीं।

आश्चर्य !

और फिर अनुभव हुआ था जैसे आश्चर्य करने की शक्ति भी शेष हो चुकी है अर्जुन के भीतर ! वे एक ऐसे प्रारंभ को देख रहे थे, जिसका अन्त न था ! अनन्त ![1]

असंख्य ज्योति-किरणों से भरा आकाश उनकी दृष्टि के सामने उभरा था··· इस आकाश में कितने सूर्य हैं यह भी नहीं देख सके थे अर्जुन। केवल यह देख पाये थे कि इन अनेक सूर्यों से आलोकित उस अलौकिक प्रकाश में श्रीकृष्ण की छवि उभरने लगी है···

लगा था कि उस ज्योति के पार केवल ज्योति है, ज्योति के पूर्व केवल ज्योति और उस ज्योति के अतिरिक्त जीवन, जगत, जड़-चेतन, कुछ भी नहीं ! स्वयं की शरीर सत्ता तिरोहित होते अनुभव की थी उन्होंने ! उस

---

१. विशेष : महाभारत-आधृत इस उपन्यास माला के १२वें खंड (अनन्त) में जो श्रीकृष्ण पर है, अर्जुन को श्रीकृष्ण द्वारा विराट के दर्शन करवाने की स्थिति, दर्शन-अंश और उन दर्शनों पर व्याख्या मिल सकेगी। 'अनन्त' शीर्षक उस खंड में ही पाठकों को श्रीकृष्ण-अर्जुन की गीता सम्बन्धी परस्पर वार्ता का काफी कुछ अंश भी मिल जाएगा।

ज्योति में द्वैत-अद्वैत भेद का वर्णन किया था उन्होंने और उस सब पर श्रीकृष्ण का आकार बिखरा हुआ··· रहस्यमय मुसकान से भरे वासुदेव !

इन्हीं वासुदेव में जन्म देखा था; इन्हीं में मृत्यु और इन्हीं में मरण-हीनता ! अद्भुत ! अलौकिक !

किस पल रथ पर ही आंखें मुंद गई थीं और फिर से उस ज्योति के अंश-दर्शन हो गए थे—ज्ञात ही न हुआ। पता तब चला था, जब पलकें खोली थीं अर्जुन ने ! लगा था कि समूचे शरीर और मस्तिष्क की हर नस विचित्र विद्युतीय सनसनाहट से भर गई है ! विराट ! ज्योति ! और ज्योति-पुंज श्रीकृष्ण !

निस्सन्देह मनुष्य नहीं हैं श्रीकृष्ण ! केवल देहधारी हैं, बस।

एक गहरा सांस लेकर चारों ओर दृष्टि घुमाई थी अर्जुन ने। वे हस्तिनापुर के समीप पहुंच रहे थे। मन में प्रश्न पुनः कुलबुला उठा था—सर्वज्ञ कृष्ण ने अर्जुन को ही क्यों चुना ?

पर आगे अपने को प्रश्न से आन्दोलित करें, इसके पूर्व सहसा स्मरण हो आया था उन्हें। कुरुक्षेत्र युद्ध से पूर्व विभूतियोग को वर्णन करते श्रीकृष्ण के शब्द।

"महाबाहु ! तुम मुझ पर परम प्रीति रखते हो, इसी कारण तुम्हें सदा श्रेष्ठ उपदेश करता हूं। तुम्हारा हित देखता हूं और तुम्हें अपने प्रभाव से युक्त करता हूं।"

"उत्तर ! यही है उत्तर !" अनायास ही अर्जुन बुदबुदाकर अपने से ही कह उठे हैं। लगा है कि भीतर-ही-भीतर कुछ भीगने लगा है—सुखानन्द की गहन तृप्ति से शराबोर होकर !

अर्जुन !

श्रीकृष्ण के ही अंश हैं वे ! जैसे सम्पूर्ण विश्व के जड़-चेतन उनके अंश

हैं ! असंख्य सूर्यों जैसे आकारहीन प्रकाश की अनगिन किरणों में बिखरे विभिन्न अंश ! उनमें से एक अंश अर्जुन ! सर्वोत्तम की चुनी हुई एक किरण और वही सर्वज्ञ निर्णय करता है कि किस किरण को किस हेतु चुने !

गौरव और सुख से भर उठे हैं अर्जुन ! इस रहस्य को सारे जीवन कितने-कितने प्रश्नों और जिज्ञासाओं के रूप में शब्दारोही करके श्रीकृष्ण के सामने दौड़ाते रहे; पर लगता है कि किसी भी बार वह नहीं पूछ सके, जो जानना चाहते थे।

या कि जान नहीं सके थे ?

और जब जाना है, तब लगता है कि जानने में बहुत देर कर बैठे। सम्भव है मोह माया, विषाद, पीड़ा, सुख और आनंद के अतिरिक्त उपलब्धि की प्रतिक्रियाओं में समय नष्ट न किया होता। उनसे प्रभावित न हुए होते; पर सारे जीवन बहुविधि प्रभावित रहे। उत्तेजित हुए, पीड़ित हुए, सुख झेला, दुःख अनुभव किया। हंसे, रोये।

इसलिए ना अर्जुन कि तुम अनुभव करते रहे कि तुम अर्जुन हो, कुन्ती पुत्र ! मन ने हंसकर उत्तर दिया है, "इसीलिए ना कि तुम श्रीकृष्ण के मित्र हो, यह अनुभूति की तुमने।"

"हां, सम्भवतः इसी कारण।" अर्जुन धीमे से ही सही; किन्तु खोए-से स्वर में अपने को ही उत्तर देने लगे हैं।

"किन्तु तुम यह कभी नहीं समझते रहे कि श्रीकृष्ण से इतर तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं है—तुम अंशमात्र हो उस विराट स्वरूप के—और किस अंश, किस किरण को क्या करना है, कौन-सी देह धरनी है ? किस तरह छोड़नी है—यह निर्णयकर्ता स्वयं कृष्ण !"

गहन सन्तोष से भर उठे हैं अर्जुन। राह कम होती जा रही है। विगत स्मरण उभर रहे हैं और उन पर किसी बार हंसने का मन होता है, किसी बार न हंसने का। मन में अजब-सी तटस्थता का भाव आ समाया है···

सुख, पीड़ा, कष्ट, आनंद और विभिन्न सांसारिक स्थितियों में यदि

यही तटस्थता का भाव लिए रह सके होते तो कितना अच्छा रहता ! मन पुनः विचारमग्न हो उठा है।

असल में अर्जुन का एकांत ज्ञानोपदेश की लम्बी राहों से गुजरने के बाद स्वयं में प्रश्न और समाधानों का निरंतर चलता रहने वाला सिलसिला बन गया है। एक समय था जब अर्जुन बाह्य घटनाओं, स्थितियों से प्रभावित होते थे, किन्तु जैसे-जैसे श्रीकृष्ण के शब्दों और उनके स्मरण में आत्मलीन हुए हैं, वैसे-वैसे बाह्य ने अप्रभावित करना प्रारंभ कर दिया !

आश्चर्य होता है। इतने कमबुद्धि रहे कि जड़-चेतन के हर रहस्य को मित्र-भाव से सारे जीवन निबाहते रहने के बावजूद उसे समझ नहीं सके ? और जब समझे हैं, तब तक जीवन का बहुतांश केवल साधारण मनुष्य की भांति सुख, दुःख, आनंद, कष्ट, पीड़ा प्राप्ति और अप्राप्ति की क्षणिक स्थितियों में व्यस्त रहकर गुजार दिया।

इस अनुभव के साथ ही अर्जुन ने यह भी अनुभव किया है जैसे व्यर्थ ही जीवन का श्रेष्ठांश खो बैठे ! इस अनुभव ने दुःखी कर दिया है।

"दुःख !" किसी ने उनके अपने अन्तर से पूछ लिया है, "आश्चर्य है धनंजय ! सुख-दुःख का हर भेद जानते हुए भी तुम अनुभूतियां कैसी ही करते जा रहे हो ?"

सहसा हंस पड़े हैं स्वयं पर। यह भी विचित्र स्थिति। सब जानकर भी उसे ग्रहण क्यों नहीं कर सके ? केवल बौद्धिक ज्ञान भर रह गया। वह ज्ञान जीवन में नहीं उतार सके। बहुत प्रयत्न किया, फिर भी बहुतांश को बिसरा बैठे। ऐसा क्यों ?

संभवतः यह भी एक रहस्य है।

अनंत के अनगिन रहस्यों में से एक।

उत्तर खोजने के लिए व्यग्र भाव से यहां-वहां देखने लगे हैं। रथ दौड़ा जा रहा है। लगता है कि पृथ्वी पीछे चली जा रही है या कि वे पृथ्वी पर आगे चले जा रहे हैं।

बस, पृथ्वी की इस दर्शित स्थिति के सत्य जैसा ही घुमावदार उत्तर है, अर्जुन के भीतर जनमें प्रश्न का।

ज्ञाता होकर भी अज्ञानी भाव से संसार रथ की यह यात्रा ही तो

अर्जुन का नर भाव है।

और ज्ञान— नारायण !

दोनों सदा एक-दूसरे के पास। फिर भी दूर ! ठीक उसी तरह जिस तरह इस रथ की गति से यह माना जाए कि पृथ्वी पीछे छूट रही है या कि रथ पृथ्वी पर आगे बढ़ रहा है ?

नर-नारायण का यही सम्बन्ध। सम्बन्ध में यही गुत्थी। बहुत सरल, किन्तु बेहद कठिन ! सरलता और जटिलता का यह साथ ही नर और नारायण का साथ। जो इस सरलता और जटिलता को हल कर सका, वही ज्ञानी। वही ब्रह्म ! वही ब्राह्मण ! वही तटस्थ !

किन्तु अर्जुन इस विचार से बेचैन हैं कि बहुत बार, तटस्थ नहीं रह पाये। तटस्थ हो सके होते तो स्थितिप्रज्ञता प्राप्त कर लेते। बहुत बार क्यों ? अक्सर ही अर्जुन तटस्थ नहीं रह सके।

श्रीकृष्ण ने स्थितिप्रज्ञ की व्याख्या करते हुए बहुत कुछ कहा था, किंतु इस क्षण केवल इतना ही याद आ सका है, "अर्जुन !" वह बोले थे, "जिसका चित्त दुःख में खिन्न नहीं होता और जो सुख की इच्छा नहीं रखता, वही स्थितिप्रज्ञ है।"

उथले, नितान्त सामान्य शब्दों में तटस्थ ! वह भी अप्रभावित। या यों कि अप्रभावित रहकर ही यह तटस्थता संजोयी जा सकती है और अर्जुन तटस्थता के मार्ग से स्थितिप्रज्ञता तक क्या पहुंचते, जबकि प्रारम्भ ही नहीं कर सके इस योगमार्ग का ? प्रारम्भ यानी अप्रभावितता !

किसी बार शरीर-सम्बन्धों के सुख को लेकर आनन्द के प्रभाव में जकड़ गए अर्जुन, किसी बार असत्य भाषण के बहाने ही सही, मन के भीतर एकत्र उस सत्यडाह को उगलने लगे, जो युधिष्ठिर के प्रति थी। एक बार क्रोध में ऐसा ही कर बैठे थे वह।

उसे याद करके भी लगता है कि दोष का स्मरण कर रहे हैं…और अब दोषों का स्मरण करके दोषी नहीं बनना चाहते। अर्जुन ने जोर से वल्गा झटकी और रथ कुरुराज्य की सीमारेखा में समा गया।

स्मरण आया, विश्वजयी होकर लौटे हैं अर्जुन। विश्वजयी तो उसी क्षण हो चुके थे, जब कुरुक्षेत्र युद्ध में जय प्राप्त की, किन्तु अश्वमेधयज्ञ के नाम पर चारों ओर अधीनस्थता की राजमोहर लगाकर इस जय को ऐतिहासिकता प्रदान कर दी हैं कुन्तीपुत्र धनंजय ने।

मन एक सुखानन्द की अनुभूति कर उठा है। मुसकराना चाहते हैं।

पर सहसा ही थाम लिया है स्वयं को। अजीब बात है! अभी, याद कर लिया था कि सुख-दुःख के प्राप्तिबोध में इस तरह की प्रतिक्रिया नहीं होने देंगे अपने-आप पर।

और भूल गये।

क्यों?

एक बेबस मुसकान ओठों पर खिलाकर अर्जुन ने याद किया था, "इसलिए कि तुम अर्जुन हो। साधारण मनुष्य। सर्वात्मा के एक जीवधारी अंश! इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।"

उपदेश पाकर भी तुम सर्वात्मा नहीं बन सकते। अंश ही रहोगे। मन सारी दुविधा से मुक्त होकर सहसा शान्त हो गया था। रथ उसी गति से दौड़ा जा रहा है।

□□

मुद्रक : आई० बी० सी० प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

आगामी-प्रकाशन

साहित्यिक बुक क्लब

१८ दिन	रामकुमार भ्रमर	८.००
अपूर्ण कथा	रवीन्द्रनाथ त्यागी	६.००
गोली और चीख	मेजर बलवंत	६.००
गीतांजलि सार	प्रेरक पुस्तिका	मुफ्त

मनोरंजन बुक क्लब

१८ दिन	रामकुमार भ्रमर	८.००
सौतन बेटी	मीनाक्षी माथुर	६.००
गोली और चीख	मेजर बलवंत	६.००
गीतांजलि सार	प्रेरक पुस्तिका	मुफ्त

सरस्वती सीरीज़

☐ बड़ा आकार ☐ आकर्षक साज-सज्जा ☐ कलात्मक मुद्रण
☐ बढ़िया कागज ☐ लेमिनेटेड कवर ☐ कम मूल्य

सुनील गावस्कर : मेरे प्रिय खिलाड़ी	१०/-
इंदिरा गांधी : जीवनी और शहादत	१०/-

आचार्य चतुरसेन

वयं रक्षामः	१०/-
गोली	१०/-
सोना और खून-१	१०/-
सोना और खून-२	१०/-
सोना और खून-३	१०/-
सोना और खून-४	१०/-
वैशाली की नगरवधू	१०/-

शिवानी

सुरंगमा	१०/-
चौदह फेरे	१०/-

अमृता प्रीतम

रसीदी टिकट	१०/-

बच्चन

मधुशाला	१०/-

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गीतांजलि	१०/-
काबुलीवाला	१०/-
बहूरानी	१०/-

मन्मथनाथ गुप्त

भारत के क्रांतिकारी	१०/-

श्रीपाद सातवलेकर

योग के आसन	१०/-

डा० सतपाल

वैज्ञानिक योगासन	१०/-

अरुणा शेठ

स्वादिष्ट भोजन कला	१०/-

जसलीन दुग्गल

भारतीय भोजन कला	१०/-

डा० शुकदेवप्रसाद सिंह

ठीक खाओ स्वस्थ रहो	१०/-

प्रकाश दीक्षित

हस्त रेखाएं	१०/-

गोपीनारायण मिश्र

भारतीय ज्योतिष	१०/-

मानस हंस

अनमोल मोती	१०/-

स्वेट मार्डेन

सफलता का रहस्य	१०/-
निराशा से बचिए	१०/-
प्रभावशाली व्यक्तित्व	१०/-

जेम्स ऐलन

चिन्ता छोड़ो : आगे बढ़ो	१०/-
जैसा चाहो वैसा बनो	१०/-

सत्यकाम विद्यालंकार

प्रेरक प्रसंग	१०/-
पंचतंत्र	१०/-

सं० प्रकाश पंडित

शे'र-ओ-शायरी	१०/-
उर्दू शायरी के नये अंदाज	१०/-

ओ० पी० शर्मा

१०/-

० लक्ष्मीनारायण शर्मा

१०/-

सामान्य रोगों की सरल चिकित्सा १०/-

अवधेश कुमार चतुर्वेदी

चमत्कारी क्रिकेटर सुनील गावस्कर १०/-

महाभारत कथा पर आधारित

रामकुमार भ्रमर

की

बारह खण्डों में उपन्यास-माला

अब तक प्रकाशित खण्ड

	पेपरबैक	सजिल्द
आरंभ-१	८·००	३५·००
अंकुर-२	"	"
आवाहन-३	"	"
अधिकार-४	"	"
अग्रज-५	"	"
आहुति-६	"	"
असाध्य-७	"	"
असीम-८	"	"
अनुगत-९	"	"

उत्कृष्ट साहित्य

बहुप्रशंसित, बहुचर्चित लेखकों के कुछ चुने हुए

१०/-
१०/-

एक दिन और सारा जीवन	पं० आनन्द कुमार	५/-
मेरी स्त्रियां	मणि मधुकर	५/-
सांप और सीढ़ी	शानी	४/-
अर्थान्तर	चन्द्रकांता	४/-
एक था केशोराम	सुदर्शन नारंग	४/-
सत्तर पार के शिखर	पानू खोलिया	४/-
तुम्हारे लिए	हिमांशु जोशी	६/-
प्यासी नदी	से० रा० यात्री	५/-
फेलूदा एण्ड कम्पनी	सत्यजित राय	५/-
वायदा माफ गवाह	अशोक अग्रवाल	५/-
अंगूरी	अब्दुल बिस्मिल्लाह	४/-
झूठ की मुसकान	हंसराज रहबर	५/-
उनका फैसला	योगेश गुप्त	६/-
बोज्यू	सुनीता जैन	३/-
थैंक्यू मिस्टर ग्लाड	अनिल बर्वे	४/-
खुले हुए दरीचे	नफीस आफरीदी	४/-
सोनभद्र की राधा व सीताराम नमस्कार	मधुकर सिंह	६/-
चंद औरतों का शहर	शैलेश मटियानी	६/-
सचिव का बहीखाता	डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी	६/-
इछोगिल नहर तक	सोहनसिंह सीतल	६/-
एकला चलो रे	डा० भगवतीशरण मिश्र	६/-
कापुरुष	आबिद सुरती	६/-
यात्रा	श्रवण कुमार	६/-
नरक दर नरक	ममता कालिया	६/-
रेत घड़ी	लक्ष्मीधर मालवीय	६/-
काला गुलाब	भीमसेन त्यागी	६/-

अनुगत

रामकुमार भ्रमर

○ अर्जुन के जीवन से सम्बन्धित घटना क्रम का
विशाल भंडार है 'अनुगत' में,
जो अत्यधिक रोचक भी है और रोमांचक भी
सुंदर, सौम्य और शालीन अर्जुन
अद्भुत पराक्रमी और बलशाली थे
बाण संधान में पृथ्वी पर
उन जैसा कोई धनुर्धारी न था
वह अपूर्व थे असाधारण भी;
परन्तु कृष्ण से अलग वह कुछ भी नहीं थे
परम मित्र, उपदेशक और मार्गदर्शक
के रूप में कृष्ण उनके रोम-रोम में बस गए थे
वह कृष्णमय हो गए थे।

○ अश्वमेध यज्ञ, पुत्र से युद्ध, सुभद्रा हरण,
उलूपी और चित्रांगदा प्रसंग
इस उपन्यास माला के नवें खण्ड की कथा के
कुछ ऐसे रोचक अंश है,
जो पाठक को निश्चय ही भाव-विभोर कर देते है।

○ अर्जुन के इस मोहक रूप और चरित्र की
रचना की है आज के प्रख्यात उपन्यासकार रामकुमार भ्रमर ने।

○ महाभारत पर आधारित उपन्यास माला ○

□ उपन्यास क्रम □

○ आरंभ	○ अधिकार	○ आहुति	○ 18 दिन
○ अंकुर	○ असीम	○ अग्रज	○ अन्त
○ आवाहन	○ अनुगत	○ असाध्य	○ अनन्त

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

हिन्द पॉकेट बुक्स